तर्क वाला उस पर ध्यान नहीं देता। जैसे पहिले तर्कवाद को उस से प्रबल अगले तार्किक ने हठा दिया वैसे ही आगे २ होने वाले प्रबल तार्किक पिछले २ तर्कवादोंको काटते जायंगे इस प्रकार केवल तर्कसे निश्चित होने वाले परोक्ष सूक्ष्म धर्मादि विषयों की कभी स्थिर व्यवस्था नहीं हो सकती इसी लिये तर्क को अप्रतिष्ठित माना है। और जब तर्क स्वयं ही स्थिर नहीं तो उस का आश्रय करने वालेका बुद्धि वा विचार एक स्थिर होजाय यह असम्भव है। जैसे लगातार घूमने वाले चाक वा निरन्तर चलते हुए वाष्पयान (रेल आदि) में बैठा हुआ कोई प्राणी चाहे कि मैं चलायमान न होऊं वा मेरा शरीर किञ्चित् भी न हिले तो यह असम्भव है। इसी प्रकार अस्थिर तर्क पर सवार रहने वालों के बुद्धि विचार सदा ही चलायमान रहेंगे वे किसी सूक्ष्म परोक्ष विषयका ठीक निश्चय भी नहीं कर सकेंगे तब उनको इष्टकी प्राप्ति वा अनिष्ट की निवृत्ति होना भी दुर्लभ है इस लिये कहा गया कि तर्क से बुद्धि को चलायमान मत करो तथापि यह विचार केवल पूरे आस्तिक पुरुषों के लिये है।

उन आस्तिक पुरुषों में भी दो भेद हैं। एक पूरे वे-दादि शास्त्रज्ञ और द्वितीय साधारण विद्वान् वा सर्वथा शास्त्रज्ञान रहित। उनमें शास्त्रज्ञ पूर्ण विद्वानों के लिये प्रमाणानुकूल तर्कसे धर्मादि विषयों को मानने समझने समझाने वा सिद्ध करने के लिये शास्त्रोंकी आज्ञा है और साधारण आस्तिक पुरुषों को वेदादि शास्त्रों में लिखे विषयों पर निर्विवाद मान लेनेकी आज्ञा है और वास्तव में आस्तिक जन २ विषयोंको निर्विवाद स्वयमेव मान ही लेते हैं वे अपने स्वभाव से ही विवाद को पसन्द नहीं करते ऐसे लोगोंके लिये तो केवल वेदादिशास्त्र के प्रमाण की ही आवश्यकता है। जैसे यजु० १९। ४७

द्वे सृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्। ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥

अर्थ—मध्यकोटि के प्राणियों वा चन्द्रलोकस्थ पितृ नामक प्राणियोंकी दो प्रकारकी गति होती है। यदि वे उत्तम कर्म करें तो अपने से उत्तम देवयोनि में जन्म

लें और यदि निकृष्ट कर्मोंकी ओर झुकें तो मनुष्यों में जन्म लेवें। अर्थात् ब्रह्माण्ड भरके सब प्राणी अपने २ कर्मोंके अनुसार इन्हीं दो उत्तम निकृष्ट मार्गोंसे चलते हैं कि जो उत्तम वा निकृष्ट पिता माता के बीच जन्म लेते हैं। तथा-

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः। नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै ॥ १ ॥ आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः। मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥ २ ॥

ये निरुक्तके परिशिष्ट अध्यायमें किसी वेदशाखाके मन्त्र लिखे हैं। ये भी पूर्वोक्त वेदमन्त्र के अनुकूल ही हैं कि-मैं मरके फिर उत्पन्न हुआ उत्पन्न होकर फिर मरा। सहस्रों योनियों वा गर्भाशयों में वास किया भिन्न २ जन्मोंमें नाना प्रकार के भोजन खाये अनेक स्तनोंके दूध जन्म ले २ कर पिये अनेक माता पिता और मित्रोंको देखा अनेक बार अनेक पिताओंका मैं

पुत्र बना इत्यादि सहस्रों प्रमाण वेदादिशास्त्रों में भरे हुए हैं। परन्तु ये प्रश्न केवल प्रमाण पूछनेके लिये नहीं किये गये किन्तु जिनमें सर्वोपरि आस्तिकता नहीं जिनमें दोनों प्रकारके भाव विद्यमान हैं उन्हींके भावसे प्रश्न किये गये हैं तथा समयानुसार भी तर्क ही प्रधान है इस कारण अब आगे तर्कानुकूल छान बीनके साथ उत्तर लिखा जायगा। क्योंकि यही संशयात्मा आस्तिकों और परोक्ष विषयों पर विश्वास न रखने वाले दोनों ही के लिये उत्तर अच्छा होगा। इस पूर्व प्रस्ताव के लिखनेसे हमारा प्रयोजन यही है कि केवल तर्कवाद को हम भी अच्छा नहीं मानते। इससे हमारा वक्ष्यमाण लेख तर्क प्रधान भी पुनर्जन्म रूप वेदोक्त सिद्धान्त की पुष्टि के लिये समझिये किन्तु प्रमाणशून्य केवल तर्क नहीं मानना चाहिये॥

प्रश्न (१)—आवागमन किस प्रकार सिद्ध है। आवागमन सत्य है तो आज तक जितने मनुष्य हुए हैं किसी को इस बातका स्मरण नहीं है कि हम कौन थे वा कौन होंगे? जैसे कि हम एक चिराग़ जलायें

फिर उसको गुल कर दें फिर वही रोशनी जो हो रही थी लौट आवे ?

उत्तर—यह प्रश्न विना जड़ वा नींव की भित्ति के समान है जब तक यह निश्चय न हो कि आवागमन किसका पूछना इष्ट है ? तो क्या उत्तर दिया जाय। यदि मान लें कि जीव, जीवात्मा वा जिसको रूह कहते हैं उसी का आवागमन पूछना है तब प्रश्न होगा कि वह कोई नित्य पदार्थ है वा अनित्य जैसा डाक्टर लोग रुधिर से भिन्न कोई जीव नहीं मानते वैसा तो नहीं ? अर्थात् जब तक निश्चय न हो कि कोई जीव वा जीवात्मा वास्तव में देह से भिन्न वस्तु है वा नहीं यदि है भी तो वह नित्य है वा अनित्य ? अथवा इन्द्रियों वा मनमें से किसी का नाम तो जीवात्मा नहीं ? इत्यादि प्रकार जीवात्मा का निश्चय हो जाने पर उसके आवागमन का विचार चल सकता है इस लिये हम पहिले उन्हीं बातों का विचार क्रम से लिख कर पीछे यथोचित उत्तर देंगे॥

१—अस्तिनास्तिवाद।

अनेक लोग शरीर की प्रत्यक्ष चेतनता को संयोग

जन्य गुण मानते हैं कि जैसे अनेक वस्तुओं के संयोग में एक नया गुण वा नयी शक्ति उत्पन्न होती है वैसे ही शरीर के सम्बन्धी वीर्य रुधिरादि के संयोग से चेतनता शक्ति हो जाती है किन्तु शरीरके रुधिरादि धातुओं से भिन्न कोई जीवात्मा नहीं है ॥

इस का उत्तर हम यह देते हैं कि संयोग जन्य गुण वा शक्ति का नाम कोई कुछ और भी माने वा रक्खे तथापि वह बुद्धि वा ज्ञान से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं ठहर सकता। तो यही आशय होगा कि बुद्धि वा ज्ञान संयोगजन्य शक्ति है और उससे भिन्न कोई जीवात्मा नहीं तब हम पूछते हैं कि वह बुद्धि रूप शक्ति एक ही है वा अनेक वह जन्म से मरण तक एक ही सी बनी रहती वा बदल २ के भिन्न २ होती जाती है अर्थात् शरीर के साथ नित्य है वा अनित्य ?। यदि नित्य मानो तो जन्म से जाने हुए सब विषयों का सदा ही एकसा स्मरण रहना चाहिये और पहिले ज्ञान वा बुद्धि आगे कभी बदलना नहीं चाहिये परन्तु ऐसा नहीं होता न हो सकता है । इसको कोई सिद्ध भी नहीं कर सकता कि सब विषयों का सदा

किसी को स्मरण रहे वा बुद्धि न बदले। सुने आने अच्छे बुरे विषयों का प्रत्येक समय किसी को स्मरण रहता नहीं दीखता तथा प्रत्यक्षमें सभीकी बुद्धि नित्य नित्य बदलती जाती है तो शरीर के समान बुद्धि भी अनित्य सिद्ध हुई इस दशामें कोई नहीं कह सकता कि हमारी बाल्यावस्थामें जो बुद्धि थी वही अब यौवनावस्था वा वृद्धावस्था में भी बनी है। और बुद्धि से भिन्न नित्य आत्मा कोई उस के मतमें है नहीं, तो उस के मतमें प्रत्यभिज्ञा नहीं बनेगी और प्रत्यभिज्ञा सबको प्रत्यक्षमें होती ही है। जैसे जिस प्रकारका सुख वा दुःख किसी इन्द्रियद्वारा विषय के साक्षात् करनेसे कभी इस मनुष्यादि प्राणीको प्राप्त होता है उस का संस्कार इसके आत्मा में हो जाता है जब फिर कभी उसी पूर्वज्ञात वस्तुके तुल्य वस्तु को देखता वा किसी इन्द्रिय से अनुभव होता है तब पहिले जाने विषयका स्मरण आकर उसके ग्रहण वा त्याग की इच्छा होती है यदि पहिले उससे कभी सुख भोग चुका है तो उसी लोभसे फिर उसको राग होता और दुःख होनु

का है तो द्वेष होता है इस प्रकार सांसारिक सबप्राणियोंको पूर्वकालसंबन्धी दृष्टश्रुतादि के अनुसार ही प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है। अब यदि बुद्धि अनित्य है और नित्य आत्मा कोई है नहीं तो किसी को पूर्वका स्मरण नहीं रहना चाहिये। जैसे एक राजा मर जाय तो उसीके स्थान में दूसरा गद्दी पर बैठे तब कोई पहिले राजाका मित्र आकर अगलेसे कहे कि मैं अमुक हूं अमुक समय आपसे मिला था अमुक विचार हुआ था तो इस प्रथम राजाके साथ हुए व्यवहारों का स्मरण दूसरे को नहीं हो सकता वैसे ही पूर्वकाल के विषय ज्ञान समय की बुद्धि तभी नष्ट हो गई उस बुद्धि के ज्ञात विषय का स्मरण यदि अबकी नवीन उत्पन्न हुई बुद्धि को हो सकता है तो हमारे जाने हुए विषयों का स्मरण तुमको भी होना चाहिये वा सबके अनुभूत विषयोंको सब लोग जान लिया करें क्योंकि अब यह नियम नहीं रहा कि जिसने जिसको देखा हो उसीको उसका स्मरण आवे इस का समाधान अनात्मवादी पर है। यदि कहो कि पूर्वानुभूतके स्मरणसे बुद्धिको

ही नित्य क्यों न मानलो क्योंकि यदि बुद्धि अनित्य होती तो हमको स्मरण ही क्यों रहता। तो हम कहते हैं कि बुद्धि जो क्षण २ में नई उत्पन्न होती प्रत्यक्ष दीखती है उसका नित्य मान लेना तो ऐसा ही असम्भव है जैसे आज जिस भोजन को तुम बना कर खाते हो उसको सिद्ध करो कि ५० वा १०० वर्ष पहिले जो भोजन वना था वही यह है अर्थात् जो प्रत्यक्ष उत्पन्न होता उस को भी नित्य ठहराने का उद्योग करना सर्वथा असम्भव है इस कारण स्मरण रहने से ही आत्मा का नित्य होना सिद्ध होता है कि जो विचार पूर्वक शोचने से बुद्धि से भिन्न पदार्थान्तर सिद्ध हो जाता है। तात्पर्य यह हुआ कि—

यथाऽनात्मवादिनो देहान्तरेषु नियतविषया बुद्धिभेदा न प्रतिसन्धीयन्ते तथैकदेहविषया अपि न प्रतिसन्धीयेरन् अविशेषात्। सोऽयमेकसत्त्वस्य समाचारः स्वयंदृष्टस्य स्मरणं नान्यदृष्टस्येति। एवं

खलु नानासत्त्वानां समाचारोऽन्यदृष्ट-मन्ये न स्मरन्तीति । तदेतदुभयमशक्य-मनात्मवादिना व्यवस्थापयितुमिति, ए-वमुपपन्नमस्त्यात्मेति ।

न्यायशास्त्रे वात्स्यायनभाष्यम् ॥

भावार्थः—जैसे भिन्न २ शरीरों में नियत हैं विषय जिनके, ऐसे बुद्धि के भेदोंका प्रतिसन्धान अनात्मवादी के मतमें नहीं होता अर्थात् जैसे किसी एक मनुष्य ने किसी वृक्षके मीठे फलको खाकर जिस बुद्धिसे उस फल का स्वाद जाना वह उसी बुद्धिका विषय नियत है उसी वृक्षके वैसे ही फलको यदि कोई अन्य मनुष्य देखे जिस ने पहिले कभी न देखा न खाया है तो उसको उसके स्वादका स्मरण कदापि विना खाये नहीं आवेगा कि इस में ऐसा स्वाद होता है क्योंकि वह स्वाद उस मनुष्यकी उसी बुद्धिका नियत विषय है जिसने उसको खाया है वैसे ही एक शरीरमें भी अन्य बुद्धि के अनुभूत नियम विषय को कालान्तरमें उत्पन्न हुई अन्य

बुद्धि कदापि स्मरण नहीं कर सकती कि यह वही पदार्थ वा फल है जिसका स्वाद मैंने अनुभव किया था। क्योंकि जैसे देहान्तर में बुद्धि भेद है वैसा ही एक शरीर में अनित्य होनेसे बुद्धि भिन्न २ है, दोनों प्रकार के बुद्धिभेदोंमें कोई विशेषता नहीं है। सो जैसे अपने देखेका अपनेको स्मरण रहता अन्यके देखेका अपनेको स्मरण नहीं होता वैसे ही अन्य किन्हीं के देखेका अन्य किसीको स्मरण नहीं होता सो इन दोनों बातों के समाधान का भार अनात्मवादीके शिरपर है जो समाधान केवल बुद्धिके मानने पर तीन कालमें भी नहीं हो सकता इसलिये बुद्धिसे भिन्न आत्माका होना सिद्ध है। यह विषय कठिन है सर्व साधारणके समझने में यथावत् आना दुस्तर है इसलिये इसका संक्षेप यह है कि जब तुम ने चलते फिरते बैठते उठते आदि प्रत्येक समय क्रमसे पहिले एक मनुष्यको देखा तो मनुष्यका ज्ञान हुआ, पीछे एक पशुको देखा तब उसका ज्ञान हुआ, फिर एक पक्षीको देखा तब उसका ज्ञान हुआ, पशुका ज्ञान होते समय मनुष्यका ज्ञान नष्ट हो गया और पक्षीके ज्ञान होनेके समय मनुष्य पशु

दोनोंका ज्ञान नष्ट होगया ऐसे ही आगे २ नया २ ज्ञान होता जाता और पिछला २ सब नष्ट होता जाता है ज्ञान और बुद्धि एक ही वस्तु है। तब जो लोग जानने वाले आत्माको ज्ञान वा बुद्धिसे भिन्न जानने वाला नित्य मानते हैं कि जो मनुष्य पशु पक्षी आदिके ज्ञान के बदल जाने पर भी नहीं बदलता उस आत्मामें मनुष्यादिके ज्ञानका संस्कार होता गया इससे आत्मवादी के मतमें तो पूर्वानुभूत विषयोंके पुनः स्मरण द्वारा आगे प्रवृत्ति निवृत्ति बन सकती हैं परन्तु ज्ञान वा बुद्धि से भिन्न जिसके मतमें कोई आत्मा नहीं और ज्ञान क्षण २ में नया २ बदलता जाता है तो मनुष्य पशु पक्ष्यादिके ज्ञान समय कोई एक जानने वाला न माननेसे अनात्मवादीके मतमें किसी पूर्वानुभूत विषयका किसीको स्मरण न होना चाहिये इसका समाधान कोई अनात्मवादी नहीं कर सकता और पूर्वानुभूत विषयों के स्मरण द्वारा ही आगे २ सब प्राणियोंका व्यवहार प्रत्यक्ष दीखता है इस कारण बुद्धि वा ज्ञान से भिन्न शरीरके भीतर एक कोई वस्तु अवश्य सिद्ध है जिसका नाम जीव, जीवात्मादि है॥

आत्मनित्यत्वानित्यत्वविचारः।

यद्यपि यह मान लिया जाय कि ज्ञानसे भिन्न जानने वाला भी कोई शरीर में है तो यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि वर्त्तमान शरीरके उत्पन्न होनेसे पहिले भी वह कहीं था और देहान्त होने पश्चात् भी वह कहीं रहेगा। ऐसा ही क्यों न मानलें कि वह शरीरके साथ ही उत्पन्न होता और शरीरके नाशके साथ ही वह भी नष्ट हो जाता है। क्योंकि शरीर के उत्पत्ति नाशसे आगे पीछे उसका कहीं पता भी नहीं लगता कि वह पहिले कहां था और पीछे कहां गया?।

इसका उत्तर यह है कि जिसका पक्ष है कि शरीरके उत्पत्ति नाशके साथ आत्माका भी उत्पत्ति नाश है उसीको सिद्ध करना चाहिये कि जैसे माता पिता के रजवीर्य से शरीर बना तो आत्मा किस वस्तु से बना? आत्मा का उपादान कारण कौन है? यदि कहो कि जैसे माता पिता के स्थूल शरीर के अंश से स्थूल शरीर बना और उन के चैतन्य आत्मा से चेतनांश आकर सन्तान का आत्मा बन गया क्योंकि वेद

में भी लिखा है कि " आत्मा वै पुत्र नामासि,, हे पुत्र तू मेरा आत्मा है। तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि जैसे पितादि के स्थिर रोगादि शारीरिक गुण उपादान कारण से पुत्रादि के शरीर में अवश्य आते हैं। इसीसे कुष्ठी के सन्तान का कुष्ठी होना सम्भव ही माना जाता और लोक में प्रत्यक्ष भी है यदि कोई सन्तान कुष्ठी न हो तो मानने पड़ेगा कि या तो उस रोग के बीर्य में व्यापक होने से पहिले का वह सन्तान है। अथवा जिस का माना जाता है उस का नहीं, अन्य किसीसे उत्पन्न हुआ है। वैसे ही पिता के आत्मा से भी उपादान कारण के आत्मगुण आने चाहिये तब जिस भाषा का विद्वान् पिता हो उसी भाषा में उस का सन्तान विना ही पढ़े पण्डित हो जाया करे, वा जैसे २ ज्ञान सम्बधी आत्मिक गुण पिता में हों वैसे २ ही पुत्र में बिना किसी उद्योग के स्वयमेव आ जाया करें, मूर्ख माता पिता के सन्तान सदा मूर्ख ही हुआ करें। कोई पढ़ाने पर भी विद्वान् न हो सके पर ऐसा नहीं होता यह सब प्रत्यक्ष प्रमाण से ही विरुद्ध है। रहा

वेद का प्रमाण सो उस का अभिप्राय स्वरूपबोधन में वा अन्तःकरणांशके आने में है अर्थात् पिता कहे वा माने कि पुत्र आत्मा मेरा स्वरूप मेरे शरीर का भाग होने से है। और मन्त्र में (हृदयादधिजायसे) का भी यही अर्थ है कि चेतनास्थान हृदय से हृदय पैदा होता है चाहें यों कहो वा मानो कि पिता का सूक्ष्म शरीरांश भी स्थूल के साथ ही पुत्र के शरीर का कारण बनता है। मनु जी ने भी मानवधर्मशास्त्र के चतुर्थाध्याय में कहा है कि—

भार्या पुत्रः स्वका तनूः।

स्त्री और पुत्र को अपना ही शरीर मानना चाहिये। यह सब आत्म शब्द के अनेकार्थ होनेसे होता है जब तुम नहीं बता सकते कि आत्मा किस उपादान से शरीर के साथ उत्पन्न हुआ तो तुम्हारा पक्ष कैसे सिद्ध हो सकता है ? । यदि कहो कि रजवीर्यादि उपादान के संयोग में एक ऐसी शक्ति वा गुण उत्पन्न हो जाता है जिस का नाम जीव वा आत्मा हो और शरीर का वियोग होते ही वह शक्ति भी वहीं नष्ट हो जा-

ती है तो हम कहेंगे कि उस शक्ति को ज्ञान वा बुद्धि से भिन्न अन्य कोई वस्तु न ठहरा सकोगे तो वही पूर्वोक्त अनात्मवाद का बखेड़ा तुम पर फिर आवेगा जो ज्ञाताके बिना केवल ज्ञानके माननेमें पूर्व लिखा गया यदि कहो कि रजवीर्य के संयोग से आत्मशक्ति हो जाती फिर उसका गुण वा शक्ति ज्ञान होता तो शक्ति वा गुण किसी शक्तिमान् वा गुणी में से होते और उसी में रहते हैं किन्तु किसी शक्ति वा गुण से शक्ति वा गुण न उत्पन्न होते और न रह सकते हैं। इस की सिद्धि के लिये जगत् में तुम को कोई भी दृष्टान्त नहीं मिलेगा। जैसे जलसे तरङ्ग उत्पन्न होते वा जल में तरङ्ग रहते हैं यह व्यवहार होता वैसे हो तरङ्गोंसे तरङ्ग होते वा तरंगोंमें तरंग रहते यह नहीं होता अर्थात् तरंगों का आधार सदा जल ही रहेगा। कदाचित् कभी यह व्यवहार भी बन जावे कि तरंगों से तरंग होते जाते हैं तव भी सोच से तरंगरूप गुण का उपादान का आधार सदा जल द्रव्य हो रहेगा और उस व्यवहारसे सजातीय अनेक तरंगों का होना सिद्ध होगा और विजातीय वस्त्वन्तर होना कदापि सिद्ध नहीं

हो सकता। वैसे यहां भी ज्ञान वा बुद्धि के अवान्तर सजातीय भेदों का होना सिद्ध हो सकेगा। कि जिन का नाम बुद्धिवृत्ति है अर्थात् वृत्ति अनेक होती हैं। अस्तु इन विचारों को छोड़ कर हम तुम्हारे कथनको मान भी लें कि किसी न किसी प्रकार शरीर के साथ आत्मा भी उत्पन्न हो जाता है तो जो लोग ईश्वर-वादी हैं अर्थात् परोक्ष कोई अनादि अनन्त अविना-शी दयालु न्यायकारी सर्वनियन्ता ईश्वर है ऐसा मा-नते हैं उन्हीं के लिये अधिकांश यह लेख है क्योंकि ईश्वर को न मानने वालों के साथ ईश्वर का अस्ति-त्व ठहराने का व्याख्यान चलाना प्रकरणान्तर है। और ईश्वर को माने विना आत्मा का नित्यत्व मन-वाने का उद्योग करना निष्फल सा है। इस कारण उस विषय को सर्वथा छोड़ देते हैं और हमारे प्रश्नकर्त्ता भी ईश्वर मानने वाले आस्तिकों में ही हैं। और महुम्मदी तथा ईसाई मतावलम्बी मनुष्य भी ईश्वर वादी ही माने जाते हैं इस कारण हमारे लेख के पूर्व पक्षी वे सभी लक्ष्य समझने चाहिये। तब हम पूछ

सकते हैं कि हम सब जगत् के उत्पत्ति नाश जन्म मरणादि की व्यवस्था करने वाला तुम भी परमेश्वर को मानते हो बताओ वह न्यायी है या अन्यायी, यदि न्यायी कहो तो उस ने भिन्न २ प्रकार के सुख दुःख विना कारण उत्पन्न कर २ सब प्राणियों को क्यों दिये ? कोई राजा विना ही अपराध अनेकों को भिन्न २ प्रकार का दण्ड नियत कर दे और किन्हीं को अच्छ २ सुख के सामान देदे तो क्या वह न्यायी कहा जा सकता है ? तब ईश्वर ने किन्हीं को सुख किन्हीं को दुःख भिन्न २ प्रकार का प्रत्यक्ष दिया दीखता है फिर वह न्यायी कैसे हो सकता है ? । यदि कहो कि जो उस के भक्त हैं उन को सुख अन्यों को दुःख देता है तो यह पीछे बन सकता है जब कि दरखास्तदार होके भक्ति करने योग्य हों जन्म से पहिले तो वे कोई भी जीव तुम्हारे मत में थे ही नहीं जो उन की भक्ति करते फिर जन्म से ही भिन्न २ सुख दुःख क्यों दिये ? । यदि कहो कि हम उस के काम में दखल नहीं दे सकते उस को सब कुछ अधिकार है जो चाहे कर सकता है । तब हम कहते हैं कि फिर तुम्हारा यह कथन था

विश्वास कि अमुक २ प्रकार से चलने वालों को वह स्वर्ग (बहिश्त) देगा और ऐसा २ न करने वाले सब नरक (दोज़ख़) में भेजे जायंगे। यही परमेश्वर का वाक्य (कलाम अल्लाः) है इत्यादि सभी मानना व्यर्थ होगा क्योंकि उस को अधिकार है, वह चाहे अच्छेको भी नरक में और बुरे को भी स्वर्ग में भेजे तो तुम कुछ भी अच्छा बुरा नहीं मान सकते उस की इच्छा पर रहा वह चाहे जैसा करे पर यह भी तुमको स्वीकार नहीं हो सकता क्योंकि सभी लोग भलाई बुराई पाप पुण्य धर्म अधर्म को अच्छा बुरा मानते हैं और मानने पड़ता ही है कि परमेश्वर पापी अधर्मी को बुरा फल देता और न्यायी धर्मात्मा को अच्छा फल देता है ऐसा मानते ही वह न्यायी हो जाता है और न्यायी रह कर वह संसार की व्यवस्था तभी कर सकता है जब जीवात्माओं के जैसे कर्म हों वैसे फल उन को देवे इस दशा में तुम को मानने पड़ेगा कि उसने सब जीवोंको उन २ वैसे २ पाप पुण्यों के अनुसार वैसा २ भिन्न २ सुख दुःख का सामान भोगने के लिये दिया है और आत्मा को शरीर के साथ उत्पन्न हुआ मानें तो वे

पाप पुण्य नहीं बन सकते किन्तु पहिले जन्मों में ही पाप पुण्यों का करना बन सकता है इसलिये आत्माको नित्य मानना चाहिये यही सिद्धान्त ठीक है। अनित्य माननेमें जो २ आपत्ति वा दोष हैं उनका निराकरण होना सर्वथा असम्भव है॥

कृतहानमकृताभ्यागमदोषः।

तदेवं सत्त्वभेदे कृतहानमकृताभ्यागमः प्रसज्यते सति तु सत्त्वोत्पादे सत्त्वनिरोधे चाकर्मनिमित्तः सत्त्वसर्गः प्राप्नोति। तत्र मुक्त्यर्थो ब्रह्मचर्यवासो न स्यात्।

वात्स्यायनः॥

यदि शरीरोत्पत्ति से पहिले कोई नित्य आत्मा न मानें तो मरणान्त समय तक मनुष्य ने जो २ पाप वा पुण्य किये वे सब व्यर्थ हुए जैसे किसी ने बहुत दिनों तक बड़ा परिश्रम करके किन्हीं वृक्षों को तयार किया जब उनमें फल लगने का समय आया तभी वह मर गया और एक किसी ने ऐसा धीरे २ बहुत दिनों

न्हों पाप किया जब उस पापके फल भोगने का समय आया तभी वह मरगया तो उन सब मनुष्यों के पुण्य पापों का कुछ भी फल न मिलना यह कृतहान कहाता और नये २ पाप पुण्य के फलों का प्राप्त होना कि जिन फलों के पाने योग्य पहिले कभी कोई काम उन्होंने नहीं किया यह कैसी शोचनीय अवस्था है? क्या आत्मा के नित्य माने विना ऐसी अनवस्थाओं का कोई और समाधान हो सकता है?। क्या अब जगत् में कोई मनुष्य ऐसा है? जो अपने परिश्रम वा पुण्य धर्म को व्यर्थ जाते देख और विना किये पापों का फल पाकर अनवस्था वा अन्याय न कहे और ऐसे को सुख माने हमारी समझ में ऐसा मनुष्य होना असम्भव है तब जो लोग आत्मा को अनित्य मानते हैं उन को अपने परिश्रम से कमाये अन्न धनादि को कोई छीन ले वा विना अपराध कोई जेलखाना करदे तो बुरा न मान कर सुख ही मानना चाहिये। जब शरीर के साथ आत्मा के उत्पत्ति नाश मानें तो विना ही कर्मादि कारणके प्राणियों की उत्पत्ति मानना हुआ। फिर मुक्ति आदि के लिये उपाय भी करना व्यर्थ होगा।

और जब विना कारण कुछ होता नहीं न इसके लिये कोई दृष्टान्त ही मिल सकता है तो उत्पन्न होते ही बालक को हर्ष भय शोकादि क्यों होते हैं? जिस विषय के ज्ञान का संस्कार जिस के भीतर पहिले से कुछ भी नहीं उस वस्तु की प्राप्ति से उस प्राणी को कुछ भी हर्ष शोक नहीं होता जैसे पशुओं को चांदी वा सुवर्ण की प्राप्ति से कुछ हर्ष नहीं होता तो विना कारण उस बालक को जिस ने उत्पन्न होने पश्चात् उन वस्तुओंका कभी कुछ भी अनुभव नहीं किया उनसे हर्ष शोक वा उन की इच्छा क्यों होती है? इसका भी समाधान अनित्यात्मवादी पर निर्भर है॥

यदि कोई कहे कि जैसे कमलादि कभी खिल जाते और कभी कुमलर जाते हैं क्या उन्हों ने कभी खिलने कुमलाने का अनुभव किया है क्या उनके भीतर ऐसा कोई संस्कार है? तो इस का उत्तर यह है कि शीत उष्ण वर्षा तथा सूर्य चन्द्रमा के उदय अस्त आदि उन कमलादि के प्रबुद्ध वा सम्मीलित होने में कारण हैं किन्तु कमलादि का निष्कारण प्रबोध तथा सम्मीलन मानो तो जैसे सूर्योदय में कमल खिलता और चन्द्रो-

दय में सम्मीलित होता है तब इस से उलटा क्यों नहीं होता ? विना नियम अकस्मात् जब चाहै तभी प्रबोध सम्मीलन कमलादि में होता तो निष्कारण कहने का अवसर था। सूर्य चन्द्रादि के होने न होने में ही वैसे होने न होने का नियम उसकी सकारणता में बड़ा प्रमाण है। परन्तु बालक के हर्ष शोक में पूर्व जन्मों का संस्कार ही कारण हो सकता है इससे जीव नित्य है। तथा बालक को उत्पन्न होते ही माता का स्तन चूंसने की अभिलाषा होती है इससे भी सिद्ध होता है कि इस ने पहिले अनेक २ जन्मों में उत्पन्न होते समय अनेक माताओंका दूध पिया है उसका सूक्ष्म संस्कार इसके भीतर बना है इसी कारण मुख के पास स्तन पहुंचते ही झट मुख में देकर उसी विधि से चूंसता है जैसे जानो अच्छे प्रकार इसने यह काम सीख लिया हो। और अन्य कोई दाल भात आदि उस के मुख में देना चाहो तो वैसे प्रसन्न चित्त से सीखे हुए के तुल्य कदापि नहीं खाता क्योंकि ऐसी छोटी अवस्था में सब जन्मोंमें उसने दूध ही पिया है इससे उस अवस्थामें वही संस्कार उद्बुद्ध होता अन्य संस्कार दब

रहते हैं। इस में यदि कोई कहे कि जैसे अयस्कान्त नाम चुम्बक पत्थर के पास पहुंचते ही लोहे में क्रिया होती है क्या उसी लोहे के टुकड़े ने पहिले कभी अभ्यास किया है? जिस संस्कार से वह चुम्बक का सम्बन्ध होते ही उस में चिपक जाता है। जैसे लोहे के पास चुम्बक के आते ही संस्कार वा अभ्यास किये विना भी लोहा चुम्बक को झट ही पकड़ता है वैसे ही मान लो कि बालक के मुख के पास स्तन किया जाय तो वह उस को पकड़ के चूंसने लगता है॥

इस का उत्तर यह है कि यद्यपि लोहे ने पहिले कभी अभ्यास नहीं किया न उस के भीतर सञ्चित संस्कार हैं तथापि लोहे का सरकना निष्कारण नहीं किन्तु सकारण अवश्य है। और हमारा साध्य पक्ष भी यही है कि निष्कारण कुछ नहीं होता जो कुछ होता है उस का कुछ न कुछ कारण (सबब) वा हेतु अवश्य होता है। यदि चुम्बक के साथ लोहे का सरकना निष्कारण है तो ईंट पत्थर ढेला जो कुछ चुम्बकके समीप लेजाया जाय वे सभी क्यों नहीं चुम्बक में लग जाते? वा लोहा अन्य किसी वस्तु के पास लेजाया

जाय वहां भी सरकने लगे ऐसा क्यों नहीं होता ? इस का उत्तर केवल यही हो सकता है कि चुम्बक में ही लोहे को आकर्षण करने की शक्ति है अन्य किसी में नहीं तथा चुम्बक में लोहे को ही खेंचने की शक्ति है अन्य को खेंचने की नहीं । अर्थात् क्रिया का होना जैसे सर्वत्र क्रिया के अदृष्ट कारण वा हेतु को सिद्ध करता है वैसे क्रियाके नियम का होना भी क्रिया नियम के हेतु को सिद्ध करता है। इस से चुम्बक के साथ लोहे की नियत क्रिया अकारण नहीं परन्तु बालक जो स्तन का दूध पीने की अभिलाषा करता है उसका कारण पूर्व जन्म के संस्कार से भिन्न अन्य कोई कदापि ठहर नहीं सकता क्योंकि प्रत्यक्ष में जिस वस्तु वा प्राणी को जिस ने कभी नहीं देखा उस को पहिले २ अकस्मात् देख कर किसी को कुछ भी हर्ष वा शोक नहीं होता । और तत्काल जन्मे बालक का पूर्व जन्म न माना जाय तो बाल्यदशा के दूध पीनेका संस्कार हो ही नहीं सकता । इस लिये उस का पूर्व जन्म मानना आवश्यक हुआ । इस आत्मनित्यानित्य विचार में और भी बहुत सा विचार लिख सकते हैं परन्तु

अधिक बढ़ाना अच्छा नहीं। जैसे एक वर्त्तमान जन्म से पूर्व जन्म सिद्ध होता वैसे पूर्व जन्म से और पहिला फिर उस से भी और पहिला। इस प्रकार अनादि काल से जन्म मरण सिद्ध होने से आत्मा वा जीवात्मा नित्य अविनाशी ठहरता है॥

इन्द्रियमनसोरात्मभावप्रतिषेधः।

कोई कहे कि ज्ञानेन्द्रियों में से किसी को आत्मा के स्थान में क्यों न मान लिया जाय? जब इन्द्रियां चेतन हैं तो अन्य किसी चेतन आत्मा के मानने की क्या आवश्यकता है? इस का उत्तर यह है कि जिस को मैंने आंख से देखा वा उस को त्वचा से स्पर्श करता हूं वा जिस को कान से सुना था, उस को अब आंख से देखता हूं यह व्यवहार नहीं बनेगा क्योंकि यहां इन्द्रियों से भिन्न देखने वा सुनने वा स्पर्श करने वाला सिद्ध है। जैसे कुल्हाड़ी से काटने वाला और कुल्हाड़ी दोनों अलग २ हैं किन्तु काटने वाला कुल्हाड़ी नहीं है वैसे यहां भी जो इन्द्रियों से काम लेने वाला है वही आत्मा है। तथा किसी कन

को एक समय किसीने खाया और आंख से भी देखा तो दोनों इन्द्रियों से उस के स्वाद तथा रूप के ज्ञान का संस्कार आत्मा में हो गया। फिर कभी उसी जाति के फल को आंख से देखकर स्वाद का स्मरण आने से जिह्वा में जल छूटने लगता है यदि इन इन्द्रियों में ही कोई आत्मा होता और इन्द्रियों से भिन्न आत्मा कोई न होता तो जैसे अन्य के खाये का अन्य को स्वाद ज्ञान नहीं होता वैसे चक्षुको रूपका ज्ञान होने से जिह्वा में विकार क्यों होता? जिह्वा में विकार होने से सिद्ध होता है कि देखने और स्वाद लेने वाला चक्षु और रसन इन्द्रिय से कोई भिन्न ही है और वही आत्मा है॥

और जैसे आंख से देखता घ्राण से सूंघता है वैसे ही मन से मनन करता वा सुख दुःख का अनुभव करता है। चक्षुरादि इन्द्रिय वाह्य साधन और मन आत्मा का भीतरी साधन है। जैसे वाह्य साधनों के विना आत्मा के बाहरी कार्य नहीं होते वैसे मन के विना भीतरी कार्य भी नहीं हो सकते। जैसे बाहरी साधनों को भिन्न मानना पड़ता है वैसे भीतरी साधन

भी आत्मा नहीं हो सकते। जैसे आंख से सुगन्ध दु-र्गन्धका ज्ञान नहीं होता तो उसके लिये घ्राणेन्द्रिय भिन्न मानने पड़ता है वैसे ही चक्षु आदिसे सुखादिका ज्ञान नहीं होता इसलिये मन आत्मासे भिन्न वस्तु है। यदि कोई कहे कि मनको माननेकी आवश्यकता ही क्या है? आत्मा स्वयमेव सुखको जान लेगा तब हम कहेंगे कि फिर चक्षु आदिके विना रूपादि क्यों नहीं देख सकता तब चक्षु आदिको भी क्यों मानते हो? तथा मन कोई वस्तु आत्मासे भिन्न न हो तो एक कालमें सब इन्द्रियोंसे सब विषयोंका ज्ञान होने लगे तो निश्चयात्मक ज्ञान कोई भी न हो और एक कालमें सबसे ज्ञान होता नहीं इससे भी मन का भिन्न होना सिद्ध ही है॥

अभिनिवेश।

मृत्युका भय भी प्राणिमात्रके पीछे ऐसा लगा है जिस से और बड़ा दुःख जगत् में कोई भी नहीं कहा जा सकता। चींटी से लेकर बड़े वा विद्वान् से भी अ-धिक विद्वान् सब अभीष्टोंसे अधिक जीवनको चाहते,

सबसे अधिक बुरा मृत्यु को ही समझते हैं, किसीसे कहा जाय कि तुम संसार के सब सुख मांग लो पर अपना प्राण हमको देदो तो कदाचित् प्राणसे प्यारा किसीको भी कोई न मानेगा न लेगा। सब प्राणिमात्र यही चाहते हैं कि ऐसा न हो कि हम न रहें कहीं मृत्यु न हो जाय। एं! मृत्यु!! मरण!!! क्या ऐसा बड़ा मरणभय पूर्व संस्कार के विना कभी हो सकता है? जो मरण दुःखको नहीं जानता न कभी भोगा उसको भय क्यों हो? जब किसीका कोई इष्ट मित्रादि मर जाता है तब जो शोक होता उसका भी प्रधान कारण अपने मरणका भय ही है कि इसी प्रकार हम को भी इस जगत्से चल देना है ऐसे संस्कारके उद्बुद्ध हो जाने से मलिनता और उदासीनता छा जाती है। यदि कोई कहे कि अन्योंको मरते देख कर भय होता है तो ठीक नहीं क्योंकि तत्काल के उत्पन्न हुए प्राणियों को भी वैसा ही भय प्रत्यक्ष होता है यदि कोई ऐसा वस्तु उनके सामने ले जाया जाय जो वास्तव में उनके मृत्युका हेतु हो वा कोई ऐसा काम किया जाय जिससे उनका मृत्यु हो सकता है और उनको अपने मारकका बोध

भी हो जाय तो उनका भी वैसा ही वा और भी अधिक मरणभय होगा कांपने लगेंगे आकृति मलिन हो जायगी आकृति पर भय छाजायगा। प्रत्यक्ष अनुमान और शास्त्र आदिसे भी उन तत्काल जन्मे प्राणियोंको मरण भयका जब कुछ भी अनुभव नहीं हुआ तो भयका होना पूर्वजन्मके अनुभूत मरण दुःख का अवश्य अनुमान कराता है इस से भी आत्माका नित्यत्व और पुनर्जन्म होना दोनों सिद्ध होते हैं ॥

जब यह कहा जाय कि रागद्वेषादि दोष वा अविद्यादि क्लेशोंके छूटने पर मुक्ति होती है तो अर्थापत्ति से सिद्ध हुआ कि दोषों वा क्लेशोंके बने रहने पर मुक्ति नहीं होती किन्तु बार २ जन्ममरण भोगने पड़ते हैं। इससे भी आत्माका आगे पीछे बार २ जन्म होना सिद्ध है ॥

पुनर्जन्म, पुनरुत्पत्ति, प्रेत्यभाव ये सब एकार्थ ही शब्द हैं। प्रेत्य नाम पूर्व शरीरको छोड़ कर भाव नाम फिर उत्पन्न होना पहिले ग्रहण किये शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि आदिको छोड़ना मरण और नये शरीरादिको

ग्रहण करना जन्म कहाता इसीका नाम प्रेत्यभाव वा पुनर्जन्म है। इसी कथनसे यह भी शङ्का निवृत्त हो जाती है कि नित्य आत्माका जन्म मरण कैसा ? वा जो जीव जन्मता मरता है वह नित्य कैसा ? क्योंकि घटादि पदार्थोंके तुल्य बनने बिगड़नेका नाम जन्म मरण नहीं किन्तु एक शरीरका छोड़ना मरण, द्वितीयका ग्रहण जन्म कहाता है। जैसे कोई बिगड़ते नष्ट होते हुए किसी घरको छोड़कर नये घरमें जा बसे तो यहां घरोंका उत्पत्ति नाश माना जायगा बसने वालेका नहीं इसी प्रकार जन्ममरणका अर्थ उत्पत्ति नाश भी हो तो वे शरीर के हुए, आत्माके नहीं इससे आत्माके सम्बन्धमें जन्ममरण बन सकते हैं और आत्माके लिये यह भी कथन बन जाता है कि "न जायते म्रियते वा०" वह आत्मा कभी उत्पन्न वा नष्ट नहीं होता किन्तु नित्य है। अनादि कालसे अपने किये कर्मोंके अनुसार उत्तम मध्यम निकृष्ट योनियोंमें नाना प्रकारके शरीरोंको धारण कर २ वैसे २ सुख दुःख अनादि कालसे भोगता आता है॥

कर्म वा फलका नित्यानित्य विचार ॥

प्रश्न-प्रवृत्तिरूप कर्म अनित्य पदार्थ हैं। जब इस जन्मका किया कर्म यहीं नष्ट हो गया फिर उस कारणरूप कर्म के अभाव में जन्मान्तर में सुख दुःख प्राप्ति रूप फल कार्य कैसे हो सकता है? क्या तेलके न रहने पर कभी दीपका जलना सम्भव है? और पूर्वजन्म के शेष कर्मोंका सुख दुःख फल भोगने के लिये ही पुनर्जन्म तुम मानते हो तो जब अनित्य होने से कर्म ही न रहे तो उन के भोगने को जन्म मानना भी व्यर्थ है॥

उत्तर-यथा फलार्थिना वृक्षमूले सेकादि परिकर्म क्रियते तस्मिंश्च प्रध्वस्ते पृथिवीधातुरब्धातुना संगृहीत आन्तरेण तेजसा पच्यमानो रसद्रव्यं निर्वर्त्तयति स द्रव्यभूतो रसो वृक्षानुगतः पाकविशिष्टो व्यूहविशेषेण संनिविशमानः पर्णादिफलं निर्वर्त्तयति । एवं परिषे-

कादि कर्म चार्थवत्, न च विनष्टात् फल-निष्पत्तिः। तथा प्रवृत्या संस्कारो धर्मा-धर्मलक्षणो जन्यते स जातो निमित्ता-न्तरानुगृहीतः कालान्तरे फलं निष्पाद-यतीति ॥ वात्स्यायनभाष्यम् ।

अ० ४ । १ । ४७ ॥

भाषार्थः—जैसे वृक्षों से होने वाले छायादि फलों का अभिलाषी जन वृक्ष की जड़ में जल देना खात डालना गोड़ना आदि कर्म करता है उस कर्म के नष्ट हो जाने पर उस कर्म का परिणाम वृक्षकी जड़ों में संचित हो जाता अर्थात् जल सेचनादि कर्म से ही पृथिवी और जल का सारांश एक रूपान्तर में हुआ पृथिवी की भीतरी उष्णता से पकाहुआ रसरूप पहिला धातु बनता है वही द्रव्यरूप रस वृक्षाकृति बनने का मूल कारण है वह वृक्ष में प्रविष्ट हुआ एक भिन्न प्रकार से परिपक्व होकर वृक्षाकृति रूप बनता हुआ पत्ते आदि फलों को उत्पन्न करता है इस प्रकार जल

सेचनादि कर्म सार्थक होता है निरर्थक नहीं किन्तु कर्म के नष्ट होने पर नष्ट नहीं होता । इसी प्रकार शुभाशुभ कर्मों के सेवन से जो आत्मा के साथ संस्कार होते और काल पाकर उन्हीं का नाम वासना भी पड़ता है वे अच्छे कर्म्मों से हुई शुभ वासना वा धर्म संस्कार और अशुभ कर्मों से हुई निकृष्ट वासना वा अधर्म संस्कार कहाते वे दोनों प्रकारके संस्कार आत्मा के साथ संचित हुए संचित पुण्य पाप कहाते हैं मरण समय वे संचित पाप पुण्य आत्मा के साथ ही रहते और उन्हीं पाप पुण्योंके अनुसार उत्तम मध्यम वा निकृष्ट समुदाय में जन्म होकर संचित कर्मानुकूल ही सुख दुःख के सामान भोगने को मिलते हैं । इस प्रकार यद्यपि कर्म अनित्य है तथापि जैसे कि सुपथ्य वा कुपथ्य रूप पदार्थ की भोजनरूप क्रिया खा चुकते ही नष्ट हो जाती है परन्तु खाया हुआ पदार्थ उदरके जाठराग्नि द्वारा पकता और जैसा अच्छे वा बुरे गुणों वाला पदार्थ खाया गया वैसा ही अच्छा वा बुरा परिणाम रूप रसधातु बनता यदि वह कुपथ्य हुआ तो रसादि

धातुओंको विकारी करता हुआ रोगों को प्रकट करने वाला हो जाता है और यदि सुपथ्य हुआ तो इसी प्रकार धीरे २ धातु पुष्टि द्वारा शरीरमें सुख हेतु अच्छे फल को उत्पन्न करता है। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि कर्म के अनित्य होने पर भी उसका शुभ वा अशुभ फल अवश्य भोगने पड़ता है॥

अब हमको विश्वास है कि पूर्वोक्त इतने लेखसे प्रश्नकर्त्ता के "आवागमन किस प्रकार सिद्ध है" इतने प्रश्नांश का उत्तर आगया क्योंकि जीवात्मा का अस्तित्व, नित्यत्व और परमेश्वर की न्यायशीलता ही मुख्य कर जीवात्मा के आवागमन को सिद्ध करते हैं। अब यह विचार शेष रहा कि किसी को स्मरण क्यों नहीं रहता कि हम पूर्वजन्म में कौन थे और आगे कौन होंगे। इस का उत्तर यह है कि बुद्धि मन वा ज्ञान सब प्राणियोंका एक ही प्रकार का नहीं है किंतु कर्मोंके अनुसार प्राणधारियों के असंख्य होने से उनमें भिन्न २ असंख्य प्रकार के सुख दुःख और असंख्य ही प्रकार का ज्ञान भी है। अर्थात् स्मरण रहनेकी शक्ति

भी सब से भिन्न २ है सब को एक सा स्मरण जगत्में भी नहीं। ऐसे भी प्राणी प्रत्यक्ष विद्यमान हैं जिनको एक ही शरीर में कलके किये वा भोगे विषयका किञ्चित् भी स्मरण आज न रहे अर्थात् स्मरण दिलाने पर भी न हो तथा और आगे चलो तो ऐसे भी मिल सकेंगे जिनको तत्कालके देखे जानेका तत्काल ही कुछ भी स्मरण न रहे तथा ऐसे भी प्राणी विद्यमान मिल सकेंगे जिनको बाल्यावस्थामें २ वा २॥ वा ३ बर्षकी अवस्था में किये देखे जाने विषयोंका यथावत् स्मरण हो और उन्हीं के साथी कुछ ऐसे भी मिलेंगे जिन को ८। १० वर्ष की अवस्था के किये देखे जाने विषयोंका भी कुछ स्मरण न हो। इसी प्रकार अधिक २ शोचते जाओ तो कुछ आत्मा वा जीवकी ऐसी दशा भी मिलती है वा मिलेगी जिसको जड़ मानो वा कहो। जिस को अपनी वर्त्तमान दशाका भी स्मरण नहीं कि मैं कौन हूं और कहां हूं किस दशा में पड़ा हूं। और ऊपरी कक्षाकी ओर ध्यान दो तो तुम को ऐसे भी प्राणी दीख पड़ेंगे कि जो ज्ञान और बुद्धिकी अधिक तेजी से विना देखे जाने विषयोंको भी आंख मीच के है-

तुओं द्वारा ठीक शोच कर ऐसा जान लें और तुमको बता दें कि जानो इसने साक्षात् आंखोंसे ही देखा हो। इस लेखसे हमारा यह प्रयोजन है कि ज्ञानके तारतम्य=न्यूनाधिक भावकी अब सीमा नहीं हो चुकी और प्रत्यक्ष अनुभव करनेसे जगत्में भी अवधि नहीं दीखती, कोई भी मनुष्य प्रतिज्ञा के साथ नहीं कह सकता कि मैंने अब तक जितने वा जैसे ज्ञानवान् देखे हैं उनसे अधिक ज्ञानी अब सृष्टि में कोई नहीं है अथवा वर्त्तमान समयमें जिस कक्षा तकके ज्ञानवान् विद्यमान हैं उनसे अधिक न कभी हुए थे और न आगे हो सकते हैं। जब इनमें से किसी बातकी प्रतिज्ञा कोई नहीं कर सकता तो फिर यह भी कहना वा मानना नहीं बन सकता कि पूर्वजन्म का किसीको स्मरण नहीं क्या किसीने सृष्टिभरके प्राणियोंकी परीक्षा करली ? वा कोई ऐसा कभी कर सकता है ? हम कहते हैं कि भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालमें ऐसे मनुष्यादि होने सम्भव हैं जिनको पूर्वजन्मका स्मरण हो कि पूर्वजन्म में हम अमुक थे, पर इसमें इतना भेद अवश्य है कि आर्यावर्त्त देशमें आत्मज्ञान वा अध्यात्म बोध विषयमें

जितनी उन्नति पूर्वकालमें हो चुकी है उसकी अपेक्षा अब लक्षांश भी नहीं यदि कभी कोई आत्मज्ञान विषय में उन्नति कर सकता है तो भारतवर्षके पूर्वकालीन ब्रह्मर्षियों से आगे चढ़के कहीं नहीं जा सकता अर्थात् अध्यात्मविषय में मनुष्य जिस शिखर तक चढ़ सकता है उस प्रथम संख्या (अव्वल नम्बर) की उन्नति तक ये ही पहुंचे इससे आगे फिर मनुष्यकी शक्ति नहीं किन्तु आगे फिर परमेश्वर ही है। पहिले काल में जिन अध्यात्मविषयों को साक्षात् करने वाले सहस्रों थे वैसे अब एक भी नहीं दीखता तभी तो अभाव देखकर यह कहा गया कि किसी को स्मरण नहीं। अध्यात्म विद्या की उन्नति पहिली कक्षा है और अब वर्त्तमान काल में शिल्प वाणिज्य कला कौशल धन दौलत आदि की उन्नति तीसरी वा चौथी कक्षा की है। द्वितीय कक्षा में ब्रह्मचर्यादि द्वारा शारीरिक बल की उन्नति हो सकती है उस का भी सम्प्रति अभाव है। सो जैसे दिन रात का विरोध है वैसे ही ऐश्वर्य वा विषयानन्द के भोग और अध्यात्मज्ञान योगाभ्यासा-

दि का विरोध है। अध्यात्म विचार योगाभ्यास समाधि में विषय भोगों से वैराग्य और विषयभोग में गोता लगाने वाले परमार्थ ज्ञानसे विरक्त हो जाते हैं दोनों में एक साथ कोई नहीं चल सकता। जैसे एक मनुष्य पूर्व पश्चिम दोनों दिशाओं को एक काल में नहीं जा सकता। प्रयोजन यह है कि अब स्मरणशक्ति को बढ़ाने का समय नहीं रहा। कागज लेखनी कालिमा (स्याही) द्वारा लेख से ही काम लेनेकी क्रमशः जो उन्नति हो रही है वह स्मरण द्वारा कार्यों को न करो स्मरण रखने की आवश्यकता नहीं, इस उद्देश्य को सिद्ध करती जाती है। पहिले समय में ऐसा नहीं था। अस्तु हमारा आशय यह है कि पूर्वजन्म का स्मरण किसी को आज तक नहीं हुआ यह ठीक नहीं क्योंकि पहिले काल में ऐसे सहस्रों थे पर अब कोई २ कहीं २ ऐसे होने सम्भव हैं। यदि कहो कि हमने तो अब तक ऐसा कोई न देखा न सुना तो यह शोचो कि तुम ने वा मैंने वा किसी एक ने जितना देखा सुना है उस से आगे क्या कुछ अधिक नहीं हो सकता! तुम किसी मनुष्य को जब बताओगे कि इस ने जितना

देखा जाना है वह सर्वोपरि है तो कदाचित् झट ही दूसरा कोई किन्हीं अंशों में ऐसे मनुष्य को बता सकता है कि इस की अपेक्षा इतने अंशोंमें वह अधिक जानकार है। इस से यह अभिमान रखना सर्वथा भूल है कि जो हमने देखा सुना नहीं वह नहीं है। यदि कहो कि ऐसा मनुष्य तुम्हीं बताओ कि जिसको पूर्वजन्म का स्मरण हो तो उत्तर यह है कि जैसे तुम अनेक विषयों को सम्भव वा सत्य समझते हो कि इन का यथावत् जानने वाला भी कोई हो सकता है पर तुमने स्वयं उन को जाना भी नहीं और असम्भव प्रतीत न होने वा सन्देह न होने से वैसे मनुष्य की तलाश में भी उद्योग नहीं करते वैसे हम को भी पुनर्जन्म में सन्देह नहीं है। हम सत्य और सम्भव ही समझते हैं कि पूर्वजन्मों का ज्ञान भी अवश्य हो सकता है इसी लिये वैसे मनुष्य को हम खोजतेभी नहीं क्योंकि हम को सन्देह कुछ नहीं है। यदि कहो कि प्रत्येक विषय के जानकार अनेक २ उपलब्ध होते हैं यदि पूर्वजन्म का स्मरण रखने वाला कोई होता तो

कहीं दीख सुना पड़ता ?। तो उत्तर यह है कि तुमको स्वयं भी छः महीने वा एक वर्ष की अवस्था का कुछ भी स्मरण न होगा और ऐसा मनुष्य कभी देखा सुना भी न होगा। तो क्या उस के बुद्धि विचारों का उस काल में अभाव हो सकता है ? . यह निश्चय रक्खो कि अच्छे वा उत्तम सदा ही न्यून होते हैं सूर्य चन्द्रमा एक ही एक हैं राजा एक होता प्रजा अनेक होती है। जब एक वर्ष के भीतर अत्यन्त बाल्यावस्था का ही स्मरण रखने वाला मिलना कठिन है जब कि इन्हीं आंख आदि इन्द्रियों से सब देखना आदि काम होता था और यही शरीर भी है तो पूर्वजन्म का न शरीर रहा न इन्द्रियां रहीं सब साधन बदल गये उस समय का स्मरण रहना कठिन वा दुर्लभसा हो तो आश्चर्य ही क्या है ? पूर्व जन्म की जाति का स्मरण मनुष्य को कैसे हो सकता है सो मानवधर्मशास्त्र के अ० ४ । १४८ । १४९ में लिखा है—

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च ॥
अद्रोहेणचभूतानां जातिंस्मरति पौर्विकीम्॥

पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः।
ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते॥

अ०—जो शौच और तप आदि नियमों और अहिंसादि योगशास्त्र में कहे यमों का यथावत् निरन्तर सेवन करने के साथ वहुत काल तक निरन्तर वेद का अभ्यास करता है वह पुनर्जन्म के सब वृत्तान्त को जान लेता उस को पूर्वजन्म का सब स्मरण हो जाता है। उस पूर्वजन्म के स्मरण से फिर भी वेद का ही अभ्यास करता जाता है उस नियमानुसार निरन्तर जन्म भर किये वेदाभ्यास से मरणानन्तर अनन्त मुक्ति सुख को भोगता है। क्या कोई मनुष्य कह सकता है कि यमनियमों के ठीक २ अनुष्ठान के साथ १०।२० वर्ष भी किसी ने सब काम छोड़कर एकान्त वैठ जितेन्द्रिय हो के केवल वेद का निरन्तर अभ्यास किया हो वा कोई कर सकता हो। जब तुम देखते हो कि हाईकोर्ट के वकील वारिष्टर आदि होने के लिये कितना २ परिश्रम कितना २ धन आदि खर्च करते हैं तब संसार के छोटे २ कामों को सिद्ध कर पाते हैं तो एक

ऐसे बड़े पारमार्थिक ज्ञान में घर बैठे बातों २ में कोई कृतकार्य हो जाय क्या यह सम्भव है ? अर्थात् कदापि नहीं। और यह कहना भी ठीक नहीं कि जलाये दीपक को बुताके फिर वही प्रकाश नहीं लौटकर आसकता वा वही दीपज्योति लौटकर नहीं आ सकती। इस का समाधान यद्यपि पूर्वलेख से आगया तथापि उत्तर देते हैं कि हमभी उसी ज्योति वा रोशनी का लौट आना नहीं मानते। जैसे तेल वत्ती आदि के साथ अग्नि के संयोग से जो रोशनी ज्योति हो रही थी वह फिर के नहीं आ सकती वैसे जिस शरीर इन्द्रिय वा मन आदि के साथ आत्माका जैसा संयोग था उस से जैसा जीवन चल रहा था वही जीवन फिर नहीं लौटकर आसकता जो मनुष्यादि जैसे रूप वाला जैसी बुद्धि वाला था वैसा ही लौटकर तभी जन्म लेसकता है जब उस का वही शरीर वही २ मन बुद्धि उसी आत्मा को फिर प्राप्त हो ऐसा कभी नहीं हो सकता क्योंकि शरीरादि सब पृथिव्यादि भूतों में मिल जाते हैं। परन्तु जैसे दीप जलने से पहिले भी अग्नि कहीं दीवासलाई आदि में था जो तेल बत्ती के संयोग से

ज्योतिरूप हो कर जलने लगा और बुत जाने परभी आकाश पृथिव्यादि में अवश्य कारणरूप से बना रहता है ऐसे ही जीवात्मा भी जीवनरूप संयोगजन्यकार्य का कारण है वह भी आगे पीछे अपने स्वरूपमात्र में रहता है इस से यह दृष्टान्त ठीक नहीं। योगशास्त्र के विभूतिपाद में भी लिखा है कि पूर्वजन्म का स्मरण इस प्रकार हो सकता है कि—

संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥

सूत्र १८ ॥

भाष्यम्—द्वये खल्वमी संस्काराः स्मृतिक्लेशहेतवो वासनारूपा विपाकहेतवो धर्माधर्मरूपास्ते पूर्वभवाभिसंस्कृताः परिणामचेष्टा निरोधशक्तिजीवनधर्मवद परिदृष्टाश्चित्तधर्मास्तेषु संयमः साक्षात् क्रियायै समर्थः। नच देशकालनिमित्तानु-

भवैर्विना तेषामस्ति साक्षात्करणम् । तदित्थं संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानमुत्पद्यते योगिनः । परत्राप्येवमेव संस्कारसाक्षात्करणात्परजातिसंवेदनम् ॥

भाषार्थः—इस जन्म मरण प्रवाहमें अनादि काल से पड़े हुए आत्माके साथ दो प्रकारके संस्कार पूर्वजन्मों के शुभाशुभ कर्मोंसे संचित हुए विद्यमान हैं । एक तो स्मरण वा क्लेशोंके हेतु वासनारूप संस्कार कहाते उन से किसी बातका स्मरण हो और बुराईका स्मरण आवे तो मनमें ही क्लेश हो वा अविद्यादि क्लेशोंकी पुष्टिके के लिये संचित रहें और द्वितीय धर्म अधर्मरूप से संचित संस्कार प्रारब्धरूप फल देते हैं । उन दोनों प्रकारके संचित संस्कारोंमें संयम नाम धारणा ध्यान समाधिका अभ्यास करनेसे साक्षात्संस्कारोंका बोध हो जाता है अर्थात् जैसे हमने दश वर्ष पहिले कोई वस्तु देख सुनके जाना था पीछे अन्य व्यापारोंमें चित्त लगता गया उसको सर्वथा भूल गये फिर कभी उसी प्रकार

का स्थान कि जिसमें देखा था सामने आवे वा वही काल हो और उस पूर्वदृष्ट विषयका स्मारक कोई निमित्त चिन्ह भी प्रत्यक्षमें आजावे तो उस भूले हुए १० वर्ष पहिले देखे विषयका जैसे हमको सब साङ्गोपाङ्ग स्मरण आजाता है वैसे ही पूर्वजन्मका भी सब वृत्तान्त हम प्रत्येक मनुष्यके आत्मामें अज्ञानान्धकारसे आच्छादित तिरोभूत दबा हुआ विस्मृत हो रहा है। जब योगाभ्याससे आत्मशुद्धि क्रमशः की जाती है तब वे सब संस्कार धीरे २ खुलते जाते हैं इस से योगी पुरुषको पूर्वके सैकड़ों जन्मोंका पूरा २ साक्षात् ज्ञान हो जाता है यह सब विचार पूर्वजन्म के यथावत् स्मरण पर है अर्थात् यथावत् साक्षात् विशेष स्मरण किसी योगी ज्ञानी ही को पूर्वोक्त साधनों से हो सकता है और वैसे कुछ २ न्यूनाधिक सामान्य स्मरण तो सब को है। हमने पूर्वजन्म में मरण दुःख का जो अनुभव किया है उस का सूक्ष्म स्मरण ही तो हम प्रत्येक प्राणी को मरण के नामसे भी विशेष भय दिला रहा है। तथा जो लोग प्रारब्ध को प्रबल मानते जिन का सिद्धान्त है कि "कर्म रेख नहिं मिटे मिटाई,, अर्थात्

पूर्वजन्मों में जैसा किया है वैसा ही फल मिलेगा इस प्रकार का जिन को विश्वास है वह भी सामान्य प्रकार के स्मरण को जताता है । तथा आस्तिक विद्वानों को साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा जितना अधिक स्मरण है उतना ही उन को पुनर्जन्म के होनेका अधिक निश्चय और विश्वास है । अर्थात् स्मरण अनेक प्रकार का होता है । अनेक विषय हमने इसी जन्ममें कभी २ ऐसे देखे जाने सुने हैं जिन का हम को सामान्य सूक्ष्म स्मरण तो है जिस के अनुसार हम उन विषयों को असम्भव नहीं मानते जैसे किसी बालकको अक्षराभ्यास से पूर्व ही तीन चार वर्ष की अवस्था में किसी पुस्तकमें लिखे कई विषय कण्ठस्थ बताये जावें और उस समय वह अपनी बोलने की शक्ति के अनुसार कह भी सकता हो फिर खेल आदि में भूल जावे दश वा पन्द्रह वर्ष तक भूला ही रहे जानो उसने वह पुस्तक कभी पढ़ा ही नहीं ऐसा भूल जाय तब १५ वा २० वर्ष की अवस्था में फिर उस को वही पुस्तक पढ़ाया जाय तो पहिले सामान्य स्मरण के अनुसार वह बालक उस पुस्तक को उस अन्य बालक की अपेक्षा

शीघ्र कण्ठस्थ कर लेगा जिस को बाल्यावस्था में वह पुस्तक नहीं पढ़ाया गया था। यद्यपि उसे यह स्मरण नहीं है कि मैंने तीन वा चार वर्ष की अवस्थामें इसी पुस्तक के वाक्य पढ़े थे परन्तु पढ़ते समय पूर्व संस्कारों ने सहायता अवश्य दी इससे सामान्य सदम स्मरण का होना सिद्ध हो गया। वैसे ही जिन किन्हीं बालकोंको इस जन्म में कुछ नहीं पढ़ाया गया ऐसे अनेक बालक किसी भाषा को पढ़ने के लिये एकसाथ बैठाये जावें सबके साथ एक सा ही पढ़ाने आदिमें श्रम भी किया जावे तो भी उनमें कोई उस भाषा में अति शीघ्र अत्यन्त प्रवीण हो जाते एक बात बताने से दो वा चार बातें उस विषयके सम्बन्धकी स्वयं समझ जाते हैं कोई मध्यम और कोई अतिनिकृष्ट दशाके होते हैं इसमें भी जो जितना शीघ्र जिस विषयको समझ लेता है उसको उतना ही पूर्वजन्मके पढ़े का सामान्य स्मरण है। यदि पूर्वजन्मका सामान्य स्मरण इसका कारण न मानें तो एक साथ एक विषय के पढ़नेवाले सब विद्यार्थी एकसे ही प्रवीण होने चा-

हिये सो नहीं होते। इससे सिद्ध होगया कि सामान्य स्मरण सबको है, तो पूर्वजन्मका किसीको स्मरण नहीं यह कहने वा माननेका यही अभिप्राय होगा कि विशेष स्मरण जैसा होना चाहिये वैसा किसीको नहीं है। क्योंकि लोकमें सर्वत्र विशेषार्थ में शब्दोंका व्यवहार होता है सामान्यार्थ में नहीं। जैसे १ सेर अन्न का भोजन करनेवाला दश बीस दाने अन्न चाब कर भी कहे कि मैंने आज भोजन नहीं किया तो भोजन शब्दके विशेषार्थ बोधनपरक हो जाने से सामान्य में भोजनका अभाव सत्य मान लिया जाता है यदि उस ने एक भी अन्नका दाना न चाबा हो तो भी सामान्य भोजनका सर्वथा अभाव कभी नहीं हो सकता क्यों कि उसने श्वास द्वारा वायुका भोजन अवश्य किया उस वायुमें अग्नि जल तथा पृथिवीके सूक्ष्म अणु भी उसके भीतर अवश्य गये जो सब मिल कर कुछ काल जीवन के हेतु हुए। इसी प्रकार अन्नका एक दाना देनेवाला दाता वा दानशील नहीं कहाता एक दाना किसीका उठा लाने वाला चोर भी नहीं माना जाता

क्योंकि दान वा चोरी आदि शब्द विशेष अर्थोंमें लिये जाते हैं। परन्तु जैसे व्यापार में एक पैसेका लेना वा देना वा चुराना भी किसी अपेक्षासे सूक्ष्ममें दान और चोरी अवश्य है जैसे एक २ तिलमें थोड़ा २ सूक्ष्म तैल न हो तो ५ सेर तिलोंमें १॥ सेर तैल कहां से आवे? वैसे ही एक दानेमें भूख निवारण की कुछ भी शक्ति न हो तो १०००० दश हजार दानों से भी क्षुधाकी निवृत्ति क्यों कर हो सकती है? अर्थात् कदापि नहीं वैसे सूक्ष्म सामान्य स्मरण भी स्मरण अवश्य है लोक व्यवहारमें देखा वा माना नहीं जाता यह अन्य बात है। अज्ञानी कौन है? क्या जिनको लोग अज्ञानी कहते मानते हैं उनमें कुछ भी ज्ञान नहीं। यदि ऐसा हो तो पत्थर अज्ञानी हो सकता है इसी प्रकार जिस को ज्ञानी मानोगे उसमें भी कुछ अज्ञान अवश्य रहेगा विशेष ज्ञानके न होनेसे अज्ञानी तथा होने से ज्ञानी कहाते हैं वैसे यहां भी विशेष स्मरण न होने से कहा वा माना जाता है कि पूर्वजन्मका किसी को स्मरण नहीं है। अब यह पहिले प्रश्न का उत्तर हो गया आगे

द्वितीय प्रश्न—

प्र०-२-आवागमन की रू से माना कि एक जीव मुर्गी का कबूतर होगा फिर वह जीव अण्डे में आया दैवसंयोग से मर गया अन्दर ही अन्दर हजारों कीड़े पड़ गये देखा गया इस का क्या कारण है ? ।

उत्तर-वह जीव दैवयोग से अण्डे में मर गया यहां तक तो कुछ शङ्का नहीं, प्रश्न केवल यह है कि फिर उस अण्डे में अनेक जीव कहां से आगये ? । इस का उत्तर यह है कि सृष्टि भर में असंख्य जीवधारी प्राणी विद्यमान हैं उन में लाखों करोड़ों ही प्रतिदिन वा प्रतिक्षण मरते और लाखों ही जन्म लेते रहते हैं। मरे हुए सब जीवों को अपने २ कर्मानुकूल सुख दुःख भोगने के लिये उन २ योनियों में जन्म मिलता रहता है। जब वह अण्डे वाला जीव मर गया तो उस अण्डे के भीतर का सामान सड़ जाता उस में एक प्रकारकी ऊष्मा गर्मी उठती है वह ऊष्मा ही जिन जीवोंके देह-धारण का कारण है वे जीव उस ऊष्मयुक्त विकृतगर्भा-शयरूप कारण में अपने २ कर्मों से प्रेरित परमेश्वर के नियमानुसार सब ओर से आकर शरीरधारण कर

लेते हैं। जैसे लोक में प्रत्यक्ष देखलो कि कहीं सदा-वर्त्त वा भोजन बांटने का प्रबन्ध हुआ तो दूर २ के भिक्षुक अन्नार्थी दीन दुःखी शीघ्र ही चारों ओर से आटूटते हैं। कहीं मधु (शहद) खुला धरा हो तो चींटी आदि वा मक्खी, थोड़े ही काल में सहस्रों आ-कर उसमें फंस जाते। यदि कोई पशु आदि का शरीर जंगल में मरा पड़ा हो तो गृध्रादि मांसाहारी जिन में से वहां पहिले एक भी नहीं दीखता था थोड़े ही काल में चारों ओर से सैकड़ों एकत्रित हो जाते हैं। यदि वर्षा ऋतु में वर्षा हो कर बन्द हो जाने पर खुले अ-वकाश में दीपक जला दिया जाय तो सहस्रों पतङ्ग जन्तु, जाने कहां २ से शीघ्र इकट्ठ हो जाते हैं जिन का दीप जलने से पहिले कहीं चिन्ह भी नहीं था। नाच तमाशे गानादि जिन २ प्रकार के जिन २ कामों में जो २ मनुष्यादि आसक्त हैं उन २ प्रकार के अच्छे वा बुरे काम जहां २ होते हैं वहां २ वैसे २ मनुष्यादि अपनी २ संचित वासनाओं से आकर्षित हो कर शीघ्र ही पहुंचते हैं जैसे यह सब अन्तःकरण के संचित

वासना रूप कर्मों के अनुसार होता है वैसे ही जहां २ अण्डे आदि में स्वेदज प्राणियों के देह धारण का सामान होता है वहां २ वे अपने २ संचित वासनारूप संस्कारों के अनुसार शीघ्र आकर्षित होकर पहुंच जाते और शरीर धारण कर लेते हैं। जैसे किसी मेला में सब प्रकार के मनुष्य सब स्थानों से जावें और वहां सब प्रकार के सामान वा अड्डे भी नियत किये गये हों तो जो कोई पण्डित विद्वान् होगा वह पुस्तकालय में वा विद्वानों की सभा में जाना स्वीकार करेगा। क्षत्रिय होगा वह युद्धसम्बन्धी सामान की ओर झुकेगा वैश्य व्यापार के वस्तु देखना चाहेगा चर्मकार अपनी गोष्ठि में जायगा और महतर पुरीषालय पाखाने के समीपवर्ती महतरों की जमात में चला जायगा अपने २ संचित संस्काररूप कर्मों के अनुसार सब लोग उस मेले (नुमाइश) में फैल जायंगे। इसी प्रकार इस जगत्रूप मेले में सब प्रकार के प्राणी अपने २ पूर्वशरीरों को छोड़ २ अपने २ पूर्व संचित कर्मों के अनुसार भिन्न २ जमातरूप योनियों वा कुटुम्बों में जन्म लेते हैं। आशा है कि अब यह सन्देह निवृत्त हो जायगा कि उस अण्डे में भीतर ही भीतर उत-

ने जीव कहां से आगये ? । यदि यह भी विचार हो कि अण्डे में घुसने का अवकाश वा छिद्र नहीं था तो उत्तर यह है कि अण्डे में घुसने का अवकाश वा छिद्र तो अवश्य हैं पर वे इतने सूक्ष्म हैं कि जिन को हम छिद्र नहीं मानते जैसे मनुष्यके शरीरस्थ रोम कूप छिद्र नहीं माने जाते परन्तु रोमकूप सहस्रों छिद्र मनुष्य के शरीरमें अवश्य हैं तभी पसीना रूप जल उन में से निकलता है और इन्द्रियों को छिद्र माना है। जीव इतना सूक्ष्म है जो सब प्रकार कि वस्तुओं में प्रवेश कर सकता है क्योंकि वह सूक्ष्म अणुओं से भी अधिक सूक्ष्म है। उस के लिये ऐसी शंका नहीं हो सकती ॥

प्रश्न–३ वर्षाकालमें नाना प्रकार के जीव जन्तु जैसे सिड़िया गिजाई वगैरह उत्पन्न होते हैं यदि ये जीव आवागमन के हैं तो क्या इन का नम्बर वरसात ही में लगता है ? ॥

उत्तर—इस प्रश्न का कुछ उत्तर तो पूर्व प्रश्न में आगया है। और शेष यह है कि ईश्वर की सृष्टि अ-

नन्त है। एक २ योनि में असंख्य प्राणी हैं केवल पृथिवीमात्र सप्तद्वीप में जो सृष्टि प्रत्यक्ष हो सकती है उतनी ही नहीं है पृथिवी के समान सहस्रों लोक हैं जिन के प्राणियों का परिवर्त्तन भी होता रहता है। वर्षाकाल में भिड़िया गिजाई आदि जो जीव एक साथ सहस्रों लक्षों प्रकट हो जाते हैं उन में प्राणी अपनी जाति के अनुसार पूरे २ शरीरों वाले एक साथ दीखने लगते हैं वे तो गर्मी की अधिकता से पहिले से पृथिवी में घर बना कर रहते हैं जैसे पृथिवी में हम मनुष्यादि के घर होते वैसे सभी पार्थिव प्राणियों का पृथिवी और जल जन्तुओं का जल तथा वायव्य प्राणियों का वायु स्थान है। जैसे ग्रीष्म ऋतु के मध्यान्ह दुपहर के समय वा अर्द्धरात्र के समय प्रायः मनुष्यादि प्राणी अपने २ घरों में प्रवेश कर जाते हैं। इधर उधर चलते फिरते नहीं दीखते वैसे ही वसन्तादि अन्य ऋतुओं में वर्षाकाल के जीव पृथिवी के भीतर निवास करते हैं। जैसे पशु पक्षी वा मनुष्यादि सभी प्राणियों में वर्ष में एकवार वा किन्हीं में दोबार नवीन सन्तान होते हैं कि जब २ उन २ जातियों में उत्पत्ति के योग्य ऋतु आदि साधनों का अधिकांश

संचय होता है। वैसे ही बर्षाकाल में नये २ मण्डूकादि प्राणी भी उत्पन्न होते हैं मण्डूकादि का प्रधान कारण जलतत्व है उस की वृद्धि बर्षाकाल में ही होती है। तभी मण्डूक गिजाई आदि के छोटे बच्चे भी उत्पन्न हुए चलते फिरते दीख पड़ते हैं। जैसे मनुष्य के बच्चों को देखकर बड़े शरीर वालों के लिये यह अनुमान सत्य होता है कि पूरे शरीरों वाले सभी मनुष्य पहिले २ बच्चे हुए और काल पाकर बढ़ते २ पूरे हो गये वैसे ही मिड़किया आदि के बहुत छोटे २ बच्चों को देखकर यह मान लेना चाहिये कि जो बड़े २ मण्डूकादि दीखते हैं ये सभी पहिले कभी बच्चे होंगे धीरे २ बढ़े हैं। हम को जो बड़े २ मनुष्य हाथी ऊंट आदि दीखते हैं उन सब को छोटे से बड़े होने तक बराबर खाते पीते चलते फिरते कहीं रहते हमने नहीं देखा तो भी यह सन्देह नहीं होता कि ये कहां से आगये। किसी समय हम को कहीं अकस्मात् सहस्रों हाथी घोड़े आदि प्राणी दीख पड़ें तो जैसे वे कहीं थे वैसे मण्डूकादि भी कहीं थे। अब रहा नई उत्पत्ति के विषय में विचार कि मिड़िया गिजाई आदि लाखों जीवों का बर्षात में ही उत्पत्ति का नम्बर क्यों

आता है यह सन्देह अन्य पशु पक्षी आदि में भी हो सकता है जैसे कुत्ते बिल्ली भेड़ बकरी आदि प्रायः सभी प्राणियों के गर्भ धारण का कोई समय नियत है और उस नियत का कारण यही है कि उन २ प्राणियों के शरीरों का जो २ उपादान कारण है उस के सहायक साधन जैसे २ उस २ समय में मिलते हैं वैसे २ साधन अन्य समय में नहीं मिलते इस लिये वे जीव उन्हीं समयों में अधिक कर जन्मते हैं। जो २ जीव किसी योनिमें जन्म लेते हैं वे सब पहिले किसी योनि के शरीरोंको छोड़कर अवश्य आये हैं इसलिये वे आवागमन के जीव हैं यह ठीक है। जो मनुष्य कहीं मेले सभा वा बाजार आदि में आते हैं वे आने से पहिले पृथिवी के किसी भाग में किसी स्थान में किसी घरमें रहते थे जहां से आये यह निस्सन्देह मानने पड़ता है किन्तु यह कोई नहीं मानता कि ये नहीं थे वा इन के रहने का कोई स्थान नहीं था वैसे ही जो जीव नवीन शरीर धारण करते हैं उस से पहिले वे अन्य किसी योनि के शरीर में अवश्य थे। जैसे अपने २ घरों को

छोड़ कहीं मेलादि में जाने के लिये रेलवे स्टेशनों के मुसाफिरखानों में टिकट ले २ कर लोग इकट्ठे होते जाते हैं और फाटक खुलनेकी ओर ध्यान लगाये बैठे वा खड़े रहते हैं फाटक खुलते ही रेल पर चढ़ने के लिये एकसाथ भागते हैं वैसे अनेक स्थानों वा योनियों से अपने २ शरीररूप घरों को छोड़ २ शुभाशुभ कर्मों की गठरी बांधकर अपने २ संचित कर्मोंके अनुसार अव्वल दोयम इंटर वा थर्ड क्लास का टिकट परमेश्वर के नियमानुसार लेकर उन २ मण्डूकादि योनियों में जन्म लेने के लिये सन्नद्ध रहते हैं। वर्षादि उत्पत्ति का फाटक खुलते ही झटपट अपने २ क्लासों में घुसकर शरीर धारण करलेते और फिर उसी शरीररूप रेल पर चढ़े भागते चले जाते हैं। अर्थात् आवागमन वाले सभी जीवों का भिन्न २ योनियों में जन्मने का किसी २ नियत समय पर ही नम्बर आता है। इस में इतना भेद है कि जैसे सदा ही सभी जातियों में अच्छे सुकर्मी श्रेष्ठ वा प्रतापी प्राणी कम होते और बुरे सदा ही अधिक होते हैं। थर्डक्लास की अपेक्षा इंटरमें कम बैठते उससे द्वितीय कक्षा सि-

कम क्लास में कम और उस से भी कम अव्वलदर्जे में बैठनेवाले होते हैं सबसे नीची कक्षामें सबसे अधिक बैठते हैं इसीके अनुसार मनुष्यादि उत्तम जातियोंमें कम प्राणी जन्म लेते उनमें भी शूद्रकी अपेक्षा वैश्य कम होते वैश्यसे क्षत्रिय कम होते और ब्राह्मण क्षत्रियोंसे भी कम होते और ब्राह्मणोंसे भी कम पितृ देव और ऋषि होते हैं। इसके अनुसार मनुष्यादिकी अपेक्षा नीच वा क्षुद्र योनियों में प्राणी बहुत ही अधिक उत्पन्न होते और शीघ्र २ जन्मते मरते हैं। अच्छी योनिमें जन्म लेकर अधिक आयुवाला होना भी अच्छे कर्मका फल है और शीघ्र २ मरना जन्मना भी बुरे कर्मों का फल है। इसीसे चीटी गिजाई आदि योनियोंमें छोटे निकृष्ट देहधारी जीव अधिक वा असंख्य दीखते हैं। आशा है कि अब इस प्रश्नका उत्तर भी कुछ सन्तोष जनक होगया होगा। अब इसी प्रसंगमें समाधान करने योग्य कई नवीन प्रश्न उपस्थित हो गये हैं उनका संक्षेपसे कुछ थोड़ा २ समाधान हम लिख कर तब पूर्व प्रश्नकर्त्ताके शेष प्रश्नोंका उत्तर लिखेंगे।

१-प्रश्न-अंग्रेजी डाक्टरी और चरक वाग्भट्टादि ग्रन्थोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि सन्तानको कुष्ठ वा गलित कुष्ठादि रोग होते हैं उसका कारण उसके माता पिताका दोष है और वैदिक सिद्धान्त यह है कि जीव जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है तो इसमें क्या माना जावे जो जीवके पूर्व सञ्चित पाप मानो तो माता पिताका दोष कहना व्यर्थ है और माता पिता का दोष मानो तो सन्तानको अपराध बिना भोगना पड़ता है यह अन्याय है फिर जीवके पूर्व पापका फल है यह कहना नहीं बनता ॥

उत्तर-हम इसका उत्तर यह देते हैं कि माता पिताका दोष और सन्तानके पूर्व संचित कर्मानुसार फल मिलना ये दोनों बातें सत्य हैं इनमें परस्पर विरोध नहीं है पूर्वापरका भेद अवश्य है जिस जीवके पूर्व जन्म के जैसे कर्म हैं वह अपने कर्मोंके अनुसारही फल भोगनेके लिये वैसे ही माता पिताओंके यहां आकर परमेश्वरकी व्यवस्था अनुसार जन्म लेता है कि जिन माता पिताओं से उन के कर्मानुसार उसको दुख

दुःख भोगने पड़े। जिस सन्तान को पिता के शरीरके कुष्ठांश से कुष्ठी हो कर दुःख होना सम्भव था उसका कुष्ठी पिता के यहां जन्म हुआ। परमेश्वर कर्मोंके फल संसार में ही एक से दूसरे को दिलाता है किन्तु विना किसी निमित्त के सुख दुःख किसी को मिलते नहीं अब रहा यह कि सन्तान के कर्मानुसार कुष्ठ वा गलित कुष्ठ हुआ तो माता पिताका दोष क्यों कहा वा माना जाता है?। इस का उत्तर यह है कि हमने कोई कुपथ्य किया वा अनुचित किया तो वह हमारा दोष अवश्य माना जावेगा उस दोष से फल चाहें केवल हम को हो वा हमारे सम्बन्धी अन्यों को भी हो यह दूसरी बात है दोनों दशा में हम दोषी हैं क्योंकि कुपथ्य हमने किया उस से हम को रोग हो गया, हम रोगी न होते तो कहीं उस से कुछ भोजनादि के लिये उपार्जन करके अन्नादि लाते और लड़के वाले खाते सो भूखे रहे यहां भी उन लड़के वालों को पूर्वकर्मानुसार हमारा साथ मिला और कुपथ्य के दोषी हम अवश्य रहे। यदि पिता वैसे कुपथ्य न करता जिससे उसको और उसके सन्तान को कुष्ठ हुआ तब आप कहेंगे कि

सन्तान के कर्म मानने व्यर्थ हैं। तब हम कहते हैं कि जिन के माता पिता में कुष्ठादि नहीं क्या ऐसे किन्हीं मनुष्यों को क्या कुष्ठादि असाध्य रोग नहीं होता? यदि होता है तो सन्तान को कुष्ठ का दुःख मिलना अपने ही कर्मों का फल रहा। संसार में प्रत्यक्ष भी ऐसे अनेक दृष्टान्त मिल सकेंगे कि जहां अपने किये कर्मोंका अन्य के द्वारा फल मिलता है। कोई मनुष्य किसीकी सेवा वा नौकरी करता है उसको अपने कर्मका वेतन फल स्वामी के दिये विना नहीं मिलता वैसे निकृष्ट कर्मों का फल भी परमेश्वर किसी निमित्त द्वारा दिलाता है। और पिता इस लिये भी दोषी है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने क्रियमाण कर्मों के सुधारने, अच्छे कर्म करने, बुरे कर्मों से बचनेकी शास्त्रमें आज्ञा है उस के अनुसार पिता ने क्यों ऐसे कुपथ्यादि किये जिस से स्वयं रोगी हुआ और सन्तान को भी रोगी बनाया। यदि कहो कि पिता कुष्ठी न होता तो भी सन्तान अपने कर्मानुसार नवीन कुष्ठ से दुःख भोगता तो इस का उत्तर यह है कि प्रत्येक रोगोंकी जैसे औ-

षधि बतायी गयी हैं वा यों कहो कि प्रत्येक दुःख के हटाने के उपाय वेद शास्त्र द्वारा बताये हैं। तब यदि कोई रोग वा दुःख हो और उसका प्रतीकार करना जो न जाने वा दुःख निवृत्ति का पूरा २ उद्योग न करे तो वही दोषी है। पूर्वजन्म के अदृष्टजन्मवेदनीय नियत विपाक कर्मों से होने वाले दुःखों की निवृत्ति का उपाय भी बाल्यावस्था पर्यन्त करना पिता माता का ही काम है क्योंकि असमर्थ दशा में सन्तान अपने दुःखों के हटाने का कुछ भी उपाय नहीं कर सकता। सन्तान की सब प्रकार ओषधि और रक्षा वा शिक्षा करना माता पिता का ही काम है यदि वे न करें वा न कर जानें तो दोषी हैं इसी तरह पुत्र बड़ा होकर माता पिता का प्रत्युपकार न करे तो वह सन्तान भी पापी वा दोषी माना जाता है। यदि प्रारब्धानुसार सन्तान का कुष्ठी होना निश्चित भी हो तथापि यदि माता पिता उस को सर्वथा नीरोग रखने के लिये अपने वा सन्तान के खान पान आदि द्वारा पूरा २ रक्षा का उद्योग करें तो सन्तान को प्रारब्धानुसार कुष्ठ होने पर

भी इतना कम वा ऐसे प्रकार से कुछ होगा जिस से दूषित और दुःखी न हो अर्थात् न होने के समानही माना जावे तो माता पिता का सन्तान के लिये छि· पनाया और सन्तान का प्रारब्ध दोनों सफल हो गये। जैसे किसी मनुष्य ने कोई ऐसा कुपथ्य किया जिससे उसको असाध्य रोग होनेका कारण संचित हो गया फिर उस असाध्य रोग के प्रकट होने से पहिले वही मनुष्य वा उस का सम्बन्धी अन्य कोई सर्वथा नीरोग रहने के लिये अच्छे पथ्य के साथ रोग नाशक-आरो· ग्यवर्द्धक वस्तुओं का सेवन करे तो उस निश्चित प्रार· ब्ध रूप असाध्य रोग की जड़ ऐसे धीरे २ भोग होकर कट जायगी कि जिससे भोगने वाले को इतना कम दुःख व्यापे जिस को वह दुःख ही न माने और प्रार· ब्ध भोग भी हो जावे। जैसे प्रत्येक मनुष्य वा प्रत्येक प्राणी के भीतर सदा ही किन्हीं रोगों के कारण सं· चित होते रहते हैं उन से विरुद्ध होने वाले पथ्यभक्ष· णादि से किन्हीं २ की निवृत्ति भी होती रहती है। अनेक कारणों से रोग भी बीच २ हो जाते हैं इस लिये प्रत्येक मनुष्यको सदा आरोग्यवर्द्धक और

रोगनाशक उपाय करनेकी आज्ञा सार्थक ठहरती है इसीके अनुसार प्रत्येक मनुष्यके अन्तःकरणमें ज्ञात वा अज्ञात अनेक पाप संचित हैं इसी लिये सदा उसको वेदकी आज्ञानुसार कुसंस्काररूप पापोंको हटाने और अच्छे संस्काररूप पुण्यका संचय करनेके लिये उद्योग करना चाहिये जो ऐसा नहीं करता वह दोषी है। अथवा जो यह मानता है कि मैं निष्पाप हूं वा मैं पुण्यात्मा हूं यह भी उसीका दोष है इससे यह सिद्ध हो गया कि सन्तानको जो कुष्ठादि होते हैं वह उसके दृष्ट अदृष्ट कर्मोंका फल है। यदि वह कुष्ठादि पिताके वा माताके रोगी होनेके कारण हुआ हो तो माता पिता भी दोषी हैं। जहां किसी कार्यके होनेमें कई शामिल होते हैं तो वे सभी अच्छे वा बुरे फलके भागी माने जाते हैं। चोरके साथ में जो खड़े भी हों या चोरीकी जो सम्मति दें वे सभी चोरके तुल्य अपराधी माने जाते हैं। वैसे ही जहां पापी सन्तान हो वे माता पिता भी दूषित पापी होंगे और जहां माता पिता निकृष्ट होंगे वहां पूर्वके पापी सन्तान जन्मेंगे जैसेका तैसे ही से प्रायः मेल होता है। पुण्यात्माओंके अच्छे सन्तान होते हैं॥

२—प्रश्न—आपने गरीबके ऊपर उपकार किया तो क्या माना जावे ? कारण जीव जैसी क्रिया करता है वैसा फल पाता है जो उसके कर्मका फल उसको मिला तो उपकार करने वालेको क्या लाभ ? और उसके ऊपर उपकार हुआ तो उसे ग़रीबको सिवाय कर्म फल मिला ॥

उत्तर—किसी ग़रीब पर उपकार करना उपकार ही माना जायगा। उपकार करने वालेको अवश्य पुण्य होगा। किसी मनुष्यने ऐसा कुपथ्य किया जिससे रोग हो कर अत्यन्त पीड़ित हो रहा हो और स्वयं उस रोगकी निवृत्तिका उपाय जानता न हो वा जानता हो तो साधनोंके न होनेसे छुटा न सकता हो और कोई धर्मात्मा वैद्य उसको मिल जावे तथा ऐसी ओष-धि देवे जिससे शीघ्र ही उसका दुःख निवृत्त हो तो जितना ही उसको सुख होगा वैसा ही वैद्य को पुण्य होगा। इस प्रकारके सन्देह जो लोगों को उ-त्पन्न होते हैं उनका कारण यह प्रतीत होता है कि कर्मों की व्यवस्थाका ठीक २ बोध नहीं है अथवा कुछ है तो लोग इतना ही समझते हैं कि जो जैसा करता

है उसको उतना ही फल भोग लेने पड़ता है बिना भोगे बीचमें किसीका कोई दुःख निवृत्त नहीं हो सकता और यदि कुछ दुःख निवृत्त हो सकता है तो जिसने जैसा किया है वैसा ही सुख दुःख उसे भोगने पड़ेगा यह सिद्धान्त नहीं ठहर सकता। इसका संक्षेप से समाधान यह है कि ये दोनों बातें सत्य हैं। जो जैसा करता सो तैसा फल पाता है इस सिद्धान्तका अभिप्राय यह है कि जो करता है वही भोगता है अन्यके किये का फल अन्यको नहीं होता तथा नियत विपाक कर्मोंका फल विना भोगे भी नहीं छूटता अर्थात् कर्म दो प्रकारके हैं एक नियतविपाक जिनका फल अवश्य भोगने पड़ेगा जैसे कोई बीज तो ऐसे हैं जिन में उगने की प्रबल शक्ति है वे अवश्य उगते हैं तथा कोई ऐसे हैं जो अनुकूल जल पृथिवी आदि के मिलने और प्रतिकूल उगने के विरोधी कारणों के अभाव में किसी प्रकार नर पचके उगजाते और प्रतिकूल कारण उनको दबादेवें तो नहीं उगते बीजशक्ति भी नष्ट हो जाती है। वैसे ही नियतविपाक कर्मोंका अवश्य फल होता है और अनियतविपाक कर्मों का

फल कुछ हुआ तो हुआ और कोई विरोधी औषधादि मिल गया तो कुछ नहीं होता जैसे नियतविपाक असाध्य रोगोंकी औषधि करने से यद्यपि रोग सर्वथा निर्मूल न हो जावे तो भी जैसा रोगनाशक प्रबल उपाय होगा वैसा ही रोग के निर्बल होने से दुःख कम होता जायगा। असाध्य रोग को दबाने का यहां तक उपाय हो सकता है कि वह इतना निर्बल और कम पड़जावे कि जिस से वह असाध्य रोग वाला अपने को रोगी भी न माने न अन्य लोग उसको रोगी कहें वा मानें। इसी के अनुसार असाध्य कुछ नहीं ठहरता जो जिस की शक्ति से बाहर है जिस उपाय वा काम को जो नहीं कर सकता वही उसके लिये असाध्य है। असाध्य और नियतविपाक प्रारब्ध एक ही बात है इसी से क्रियमाण वा संस्कार प्रबल ठहरता है। आज कल प्रारब्धवाद के लोक में अत्यन्त प्रबल हो जाने के कारण ऐसी ऐसी शंका अधिक उत्पन्न होती हैं। प्रारब्ध को सर्वांशों में सर्वोपरि प्रबल मानें तो कोई मनुष्य कुछ भी नहीं करसकता किसी गरीबका उपकार होता है वा नहीं इसको तो अलग रहने दो

प्रथम तुम्हीं कुछ नहीं कर सकते किसी रोगकी औषधि न करनी चाहिये घरमें दीपक जलाना व्यर्थ है किसीसे विद्या शिक्षा लेना कोई पुस्तक पढ़ना धर्मोपदेशग्रहण करना तथा वेदादि शास्त्रोंका उपदेश कि ऐसा करो ऐसा न करो इत्यादि सभी व्यर्थ है क्योंकि यदि इन सबसे कुछ उपकार होता है तो जैसे पहिले कर्म किये वैसा फल मिलना चाहिये वह नहीं रहा और यदि पहिलेके अनुसार ही सब होता है तो अब कुछ नहीं करना चाहिये। इस लिये सिद्धान्त यों मानना चाहिये कि पूर्वसंचित पाप पुण्योंका फल वर्त्तमान कर्मों को मिलाकर होता है जैसे किसीने कोई कुपथ्य किया उसके संचित रोग कारण को जब तक कोई सहायक अन्य कुपथ्य नहीं मिलता तब तक वह पूर्व संचित कुपथ्य रोग नहीं करेगा। यदि उससे विरुद्ध पथ्य करनेलगे तो वह रोग का संचित कारण धीरे २ नष्ट हो जायगा। इसी प्रकार पूर्वके संचित कर्मों को जगाने के लिये वैसे ही कर्म वर्त्तमान में हों तो फल होगा विरुद्ध होने से पहिला पड़ा रहेगा परन्तु दोनो में जो प्रबल पड़ जायगा उसका भोग होगा। यदि पहिला प्रारब्ध

कहीं प्रबल है तो उससे विरुद्ध काम करने पर भी पहिले का ही भोग होगा। पर अधिकांश यही है कि प्रारब्ध और क्रियमाण दोनोंको मिला कर भोग होता है। इससे जैसा करता है जैसा किया है और जैसा करेगा वैसा फल मिलेगा यह मानना चाहिये किन्तु यह नहीं कि जैसा करेगा वैसा फल मिलेगा यह मानना चाहिये किन्तु यह नहीं कि जैसा किया वैसा ही मिले। कर्मव्यवस्थाको अलौकिक नहीं मानना चाहिये लोकमें प्रत्यक्ष जैसे रोगादिक के विषय में फलोंके होनेकी व्यवस्था होती है वैसे ही जन्मान्तरीय कर्मोंमें भी जानो। जैसे किसी ने परिश्रम से संचित करके कुछ धन कहीं गाड़ दिया वह उस को शुभ फल मिलनेके लिये संचित कर्म है पर यदि उस को अन्य कोई चोरादि ले जावे तो नहीं। ऐसे ही प्रत्येक प्रारब्ध कर्मके साथ इतना लगा लेना चाहिये कि यदि अनियतविपाक कर्म है तब तो सर्वथा ही दुःख निवृत्ति का उपाय सार्थक है और यदि नियतविपाक कर्म है तो क्रियमाण से भी भावी दुःख निर्बल वा कम हो जायगा। और किये कर्मका फल

भोगना अवश्य पड़ेगा। इसके साथ यों लगा लेना चाहिये कि यदि रोग हटानेकी औषधि न करेगा वा व्यर्थ के स्नान दर्शनादि से छुड़ाना चाहेगा तो छूटेगा नहीं उस कर्मको भोगने पड़ेगा। संसार में ऐसा कोई सामान्य वा उत्सर्ग नहीं जिसका विशेष अंशमें कहीं कोई अपवाद बाधक न हो इस लिये जितने सामान्य नियम हैं उन सबमें न कहने पर भी अपवाद का अंश पहिले से छोड़ देने पड़ता है जैसे कोई कहे कि "प्रातःकाल मथुरा को अवश्य जाऊंगा, यदि उसी समय कोई ऐसी रुकावट हो जिस से रुकने ही पड़े तो न जाऊंगा।" यह अपवाद है वैसे ही यदि पाप छुड़ाने का कोई विशेष उपाय न किया जाय तो नियत विपाक कर्मका फल भोगने ही पड़ेगा। "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" किया हुआ शुभ शुभ कर्म अवश्य भोगने पड़ेगा इसका स्पष्ट अभिप्राय है कि तुम बुरा कर्म करके दुःखसे न बचोगे। यदि प्रायश्चित्तादि उपाय से छुड़ाओगे तो वह भी एक प्रकार का भोग है। किसी गरीबका कोई दुःख छुड़ावे तो छुड़ाने वालेको पुण्य अवश्य हुआ पर जैसा हो उस

दीनका दुःख छूटा वैसा उस पर दुःख छुड़ाने वालेका कुछ ऋण भी हो गया उस ऋणको न चुकावे तो ऋणी होने से पापी रहेगा और प्रत्युपकार करके ऋण छुड़ावेगा तो वह भी एक प्रकारका फल भोग है। इस से उपकार वा लाभ होना और कर्त्ताको अपने कियेका अवश्य फल मिलना दोनों ही बातें सत्य हैं?॥

३—प्रश्न जो जीव पाप कर्मोंका फल दुःख भोगता है तो उसको यह ईश्वरके तरफसे शिक्षा वा सज़ा है फिर आपगणने उसको दुःखसे छुड़ानेका उपाय क्यों करना॥

उ०—ईश्वरीय नियमानुसार अपने कर्मका फल भोगता है। ईश्वरने यह आज्ञा नहीं दी जो अपने कर्मका दुःख फल भोगता हो उसको दुःख से मत बचाओ किन्तु वेदमें यह आज्ञा अवश्य दी है कि परोपकार करो दुःख से बचाओ " देहि मे ददामि ते " तुम मुझ को और मैं तुमको सुखहेतु पदार्थ दूं जिससे परस्परका उपकार हो इस प्रश्नका विशेष उत्तर पूर्व आ चुका॥

ये तीन प्रश्न एक महाशयके थे जिसका संक्षेपसे उत्तर लिख दिया अब एक महाशयका एक प्रश्न बड़ा लम्बीभूत है उसका भी थोड़ा सा उत्तर लिखते हैं।

प्रश्न—जीव और ईश्वरकी सिद्धि निम्नलिखित हेतुओंसे नहीं होती इससे पुनर्जन्मविषयक विवाद ही निर्मूल है। यथा—

१—ईश्वरकी आवश्यकता पूर्वकृत कर्मोंके भोगाने के लिये है। २—जीवकी कर्म भोग करनेके लिये है। परन्तु जीव कोई संयोगजन्य पदार्थसे अन्य सिद्ध ही नहीं क्योंकि जब हम एक गुलाब, मुनक्काके अनेक खण्ड कर और पृथक् २ लगाते हैं वह सब ही अनेक जीव वृक्ष हो जाते हैं। इससे एक जीवके अंशरूप अनेक जीव कैसे हो गये? ईश्वरसे अतिरिक्त मनुष्योंने उस एक वृक्षके अनेक वृक्ष कैसे कर दिये? इससे सिद्ध है कि जीव नाम संयोगसे उत्पन्न हुई एक शक्तिका है और वह अपने तारतम्यके कारण अनेक रूपमें रहती है जैसे कि मिर्च और मिश्री मिलावें तो उसमें एक संयोगसे उत्पन्न रस गुण वीर्य विपाक प्रभाव आदि पृथक् २ ही रहेंगे और कालके प्रभावसे न्यूनाधिक भी

होते जावेंगे यही दशा जीवकी जानो। ईश्वर विषय में तो एक बड़ी हंसीकी बात यह कही कि पहिले सृष्टि में कोई एक ईश्वर नाम हुआ था उसने सब वस्तु स्थावर जङ्गमके बीज मिलाकर स्थूल कर दिया देखो अब उन्हीं वीर्य्य बीजोंमें गेहूं से गेहूं जौ से जौ मनुष्य से मनुष्य होते जाते हैं और कभी २ गधी घोड़े से खच्चर, जौ को लहसुनके मध्यमें कोच कर गाड़ने से इंदनाका वृक्ष, सूनाको तीन बार उलटाके गाड़नेसे बेलाका वृक्ष आदि आपसे आप हो जाते हैं इससे अब ईश्वरकी आवश्यकता न रही और ईश्वर मरगया अब है भी नहीं जीव तो माता पिताके रज वीर्य्यके मिलनेसे उत्पन्न हो जाता है यदि यंत्रादि साधन शुद्ध हों जैसे गेहूं आदिके बीज मातारूप पृथिवीमें पड़के जमते हैं यदि भूमि ऊषर आदि गुणवती न हो और बीज भी घुना न हो तो। परन्तु एक आश्चर्य है कि वीर्य्य एक ही छोड़ा जाता है खेत में यहां माता पिता दोनों के वीर्य्य पतित होते हैं रति समय तो क्या वह दोनों वीर्य्य और रज मिल कर शरीररूप जीव बनता है यहां दो वीर्य्योंके गिरनेका क्या कारण कभी २ स्वप्नमें

स्त्रीही का वीर्य्यपात होता वही अपान वायुसे खींचा गर्भाशयमें मूढ़गर्भ हो जाता है और अनस्थि उत्पन्न होता यहां बीज काभी अनियम हो गया इस प्रकार कभी नियमसे कभी अनियम से पदार्थ मिल कर जीव होते और भिन्न २ होकर जीवशक्ति का ह्रास होता है इससे संयोग जन्य पदार्थसे भिन्न जीव वा ईश्वर कोई नहीं यह उस नास्तिकका सिद्धान्त है।

उत्तर—पुनर्जन्मकी सिद्धिके लिये ईश्वरके सिद्ध करनेकी ऐसी आवश्यकता नहीं जैसी कि जीवात्माके सिद्ध होनेकी आवश्यकता है यदि जीवात्मा कोई अनादि वस्तु न ठहरे तो सब विवाद बिना नींवकी भित्तिके समान अवश्य निर्मूल है परन्तु ईश्वर मानने की आवश्यकता पूर्वकृत कर्म फल भुगानेके लिये ही नहीं है किन्तु परमेश्वरके मुख्यकर तीन काम हैं कि जो " जन्माद्यस्य यतः" इस वेदान्त सूत्रमें दिखाये हैं। इस जगत्के उत्पत्ति स्थिति प्रलय जिससे होते हैं ऐसे बड़े चित्र विचित्र ब्रह्माण्डको जो बनाता और बना कर बराबर नियमानुसार स्थित रखता और रात्रिके

समान नियत समय हरवार होने वाले प्रलय समयमें जो सबको अपने कारण में लय करता वह परमेश्वर वा ब्रह्म है। जैसे बड़े ये तीनों काम हैं उनके लिये वैसे ही सर्वशक्तिमान् अनादि अनन्त परमात्मा को माननेकी आवश्यकता है। जो ईश्वरको नहीं मानता उसके लिये यदि कोई ऐसा दृष्टान्त मिल सके कि इ-च्छापूर्वक वा किसी प्रकारके नियमोंसे युक्त पदार्थ जगत्में विना कर्त्ताके कोई बना सिद्ध हो जावे तो अनीश्वरवादीको कुछ कहनेका अवसर मिल सकता है। हम देखते हैं कि बागोंमें जहां पतवर लगाकर इतना २ बीच देकर आम वा अन्य वृक्ष नियम वा क्रम से खड़े होते हैं वैसा नियम वा क्रम जंगलों वा बनोंमें कहीं भी नहीं दीखता। इस सृष्टिमें भी सूर्य वा चन्द्रादिकी रचनाका एक बड़ा नियम वा क्रम प्र-त्यक्ष विद्यमान है उससे जो नियन्ता वा कर्त्ता सिद्ध होता है वह सब विद्वानोंसे अधिक विद्वान् सब बलिष्ठोंसे भी बलिष्ठ है उसको अनीश्वरवादी नहीं हटा सकता। पूर्वोक्त संसार के सर्वोपरि बडे अनन्य-साध्य कामों में मनुष्यादि को पूर्वजन्मकृत कर्मफल भु-

गाना भी परमेश्वर का काम आजाता है इस विषय पर अधिक विवाद लिखना प्रकरणान्तर है इस लिये ईश्वर की सिद्धि में यहां अधिक नहीं लिखेंगे।

अब जीव विषयक प्रश्न का उत्तर यह है कि संयोगजन्य पदार्थ सब अनित्य नाशवान् होते हैं। जीवात्मा के नित्य होने का विचार हम पहिले लिख चुके हैं और अनेक युक्तियों से सिद्ध हो चुका कि जीवात्मा नित्य पदार्थ है उसका यहां फिर लिखना पिष्टपेषणवत् व्यर्थ होगा। अब रहा गुलाब वा मुनक्का के खण्ड २ कर लगाने से अनेक जीवों के वृक्ष हो जाना इस का भी उत्तर स्थावर सम्बन्धी जीव विचार विषय में आचुका है वहां सारांश यही लिखा गया है कि जीव और बीज शब्दों का अति निकट सम्बन्ध है एक अक्षर की लौट फेर होने से बीज का जीव हो जाता है जो शरीर वा वृक्षादिकें बीजसे बनते उनमें जीव रहता है जिनमें जीव रहता है वे उस बीज से बनते हैं बीज में वह शक्ति है जिससे आत्मा जीवित रहता है जीवन शरीर में होता है जीवन प्राणधारण दोनों का एक ही अर्थ है। शरीरमें रहकर प्राणधारण

करने से ही आत्मा का जीव नाम है। डिप्टी वा मुं-
सिफ आदि का काम छोड़ देने पर घर बैठे भी जैसे
अनेक लोग डिप्टी वा मुंसिफ आदि नामों से पुकारे
जाते हैं वैसे शरीर छोड़ने पर भी आत्मा का नाम
जीव वा जीवात्मा बना रहता है। इस प्रकार बीजसे
जीव का अति निकट मेल है चाहें यों कहो कि बीज
ही जीव है वा जीव ही बीज रूप दीखता है (बीजं
मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्) (भूतानाम-
स्मि चेतना) इन गीता के कथन से भी सिद्ध है कि
जो ईश्वरांश चेतन जीव है वही बीज रूप भी है।
कहीं जीव में बीज भाव है कहीं नहीं है पर बीज
ऐसा कहीं नहीं हैं जो जीव सत्तासे रहित हो इस से
जिस में जितने बीज हैं उस में उतने तो जीव अवश्य
ही विद्यमान हैं जैसे आम निम्ब आदि का एक २
बीज भिन्न २ होता वैसे जिन्हीं स्थावरों की लकड़ी
वा डाली में बीज शक्ति होती है उन वस्तुओंके प्र-
त्येक खण्ड वा टुकड़ा एक २ बीज है जितने खण्ड उस
के बन सकते हैं उतने ही उन गुलाब आदिमें बीज हैं
किन्तु वे जीव के खण्ड नहीं किन्तु बीज के हैं गुलाब

आदि के भिन्न २ बीजरूप खण्ड बोने पर जितने २ टुकड़े से अन्य वृक्ष हो जाते हैं उतने जीव उस गुलाबादि में पहिले से विद्यमान हैं टुकड़े न होने तक उन जीवों में एक जीव समुदाय का अभिमानी था टुकड़े होने पर अपने २ अंश के सब पृथक् २ अभिमानी हो गये। समुदाय के समय एक को छोड़ के शेष जीव अपने अंशोंके अभिमानी थे मनुष्यादि के एक २ शरीर में भी सहस्रों जीव हैं पर समुदायाभिमानी एक ही है। जब वे समुदाय से पृथक् होकर अपने २ अंश के स्वतन्त्र बीज नाम कारण हो जाते हैं तब वे बीज वृक्षरूप बनते हैं किन्तु जीव वृक्षरूप नहीं बनता जीव वृक्षादि में भी तमोगुण से आच्छादित व्याप्त हो कर अखण्ड रूप से रहता है शरीर वा वृक्षादिका भी जीव नाम नहीं है किन्तु शरीर और वृक्षादि में जीव अपने भिन्न रूपसे रहता है। गुलाब आदि स्थावरों में खण्डों को जीव के खण्ड मानना भूल है। जैसे ईश्वरीय नियमों के अनुसार प्रत्येक आम आदि के वृक्ष में अनेक फल लगते अनेक बीज होते और वे सब बीज वा फल वृक्ष के अवयव कहे जा सकते हैं वैसे

जिन वृक्षों की लकड़ी वा डाली ही बीज रूप है उन के जितने टुकड़े उग सकते हैं वे सब भी ईश्वरीय नियमानुसार उस वृक्ष के बीज हैं मनुष्य ईश्वर के नियमों से विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता जिन ईख आदि की एक गांठ वाली एक पोई काटकर बोने से उगती है उस एक पोई के मनुष्य कई टुकड़े करके बोये जिन एक २ में गांठ किसी में न हो. तो वे एक भी टुकड़े न उगेंगे। जिसके जितने बड़े खण्ड में बीज शक्ति है उतना ही काट कर बोने से उगना यही ईश्वरीय नियम है। मिर्च मिश्री आदि में जीव वा जीवन का कोई अंश नहीं। उन के खाने से जीवनको सहायता मिले यह और बात है। ऐसे तो सभी जड़ पदार्थों में कुछ शक्ति है वह सब ईश्वरीय नियमों के अनुसारही काम देती है। संयोग से उत्पन्न होने वाले गुण भी ईश्वरीय नियमों से विरुद्धनहीं होते जिन वस्तुओं के संयोग से ईश्वरीय नियमानुसार जैसा गुण प्रकट हो सकता है उस से विपरीत मनुष्य कुछ नहीं कर सकता गधी घोड़े के मेल से जो खच्चर होता उस की आकृति

कुछ गर्दभ जाति और कुछ अश्व जाति दोनों से मिलती है। दो के मेलसे तीसरा वस्तु उन दोनों से कुछ विलक्षण होना यह भी ईश्वरीय नियम है घोड़ और गधी के मेल से ऊंट वा बिल्ली उत्पन्न क्यों नहीं होती ? इस का कारण तुम क्या बता सकते हो ? यदि कारण का नियम कहोगे तो उस के लिये भी नियन्ता की आवश्यकता है। यदि यह आशय हो कि बिना नियम के काम दीखते हैं तो यह भूल है क्योंकि किन्हीं वस्तुओंमें किसी अंशका नियम न होना भी एक नियम है। जैसे किसी वस्तुका किसीके साथ मेल होनेसे कई प्रकारके वस्तु बन जाते हैं तो वहां एक नहीं बनना अनेक बनना भी एक नियम है। और सब नियमोंका नियन्ता भी मानना ही पड़ता है जैसे कोई कर्म कर्ताके बिना नहीं होता वैसे नियमका होना भी नियन्ताको सिद्ध करता है।

जो मरता जन्मता है उसका नाम ईश्वर नहीं और जो ईश्वर है वह कभी मरता जन्मता नहीं।

थी जन्मते हैं वे ही मरते हैं ईश्वरका जन्म लेनाही पहिले सिद्ध नहीं है कर्म बन्धनके वशमें आकर शरीर धारण करना जन्म कहाता है, और पराधीन होकर शरीर छोड़ना मरण है। क्योंकि कर्मवश होकर परा- धीनतासे जेलमें भेजे गये मनुष्य ही कैदी कहाते हैं किन्तु निगरानीके लिये वा दर्शनार्थ स्वेच्छा से जेलमें आनेवाले कैदी नहीं कहाते हैं। इसीके अनुसार स्वेच्छा से अवतार लेके धर्म रक्षा करनेवाला ईश्वर जन्म म रण में आया नहीं माना जायगा। कृषि आदि साधनोंके ठीक २ होनेसे गेहूं आदिका उगना और साधनोंके यथावत् न होने से न उगना यह भी ईश्वरीय सृष्टि नियमको जतलाता है कि सृष्टिके आरम्भ में भी ठीक ठीक साधनोंके होने पर ही सृष्टिकी उत्पत्ति हुई वैसे ही सदा सृष्टि होती है सृष्टिके आरम्भमें जैसे प्रकृतिने स्त्री पुरुष दोनोंकी शक्तियोंको प्रकट कर परमेश्वरने उन दोनोंके संयोगसे सब जगत्को बनाया। इसका विशेष वर्णन मनुके प्रथमाध्याय में और रयि प्राण आदि शब्दोंसे प्रश्नोपनिषद्में है। जैसे सर्गारम्भ में स्त्री पु- रुष दोनों शक्तियोंके संयोगसे संसारकी उत्पत्ति हुई

वैसे अब भी कहीं प्रकट कहीं गुप्त दोनों शक्तियोंका वा स्थूल स्त्री पुरुषोंका मेल होकर ही सृष्टि होती है और आगे भी होगी दोनोंके संयोग हुए विना न कभी कोई पदार्थ जगत् में उत्पन्न हुआ न हो सकता है। अर्थात् संयोगजन्य कोई भी वस्तु उन २ कारण पदार्थोंका संयोग हुए बिना कदापि उत्पन्न नहीं होता बहुतसे सूत मिला कर कपड़ा बनता है वह कभी एक सूतसे नहीं बन सकता। ऐसेही पृथिवीमें जो बीज बोया जाता है वहां बीजपुरुषरूप वा सूर्यकी किरणों द्वारा प्राण शक्ति जो पृथिवीमें प्रवेश करती है जिसके बिना कोई बीज नहीं उग सकता वह पुरुषरूप और पृथिवी वास्तव में स्त्री है उन दोनोंके संयोगसे गेहूं जौ आदि औष-धियां वा वनस्पति वृक्षादि होते हैं। एक बीज मात्र से औषधि वृक्षादि कभी नहीं हो सकते। इसमें कोई यह कह सकता है कि कभी २ पृथिवीमें वोये विना ही टोकरे आदि वर्त्तनमें धरा २ चनादि अन्न केवल ही जमने लगता है। तो इसका उत्तर यह है कि यहां जो जलका संयोग बीजके साथ होता है वह जल स्त्री शक्ति प्रधान और पुरुष शक्ति प्रधान बीज दोनोंका

संयोग ही उगनेका कारण है वह जल चाहे मनुष्यने मिलाया हो वा स्वयं पड़ गया हो वा ईश्वरीय नियमानुसार वर्षाकालमें सभी पदार्थोंमें स्वयमेव विशेष कर जल प्रवेश करता है तभी प्रायः पृथिवीमें बोये बिना भी बीज उगने लग जाता है। इसी कारण ग्रीष्म ऋतु ज्येष्ठ वैशाखमें वर्षादि हुए बिना बीज नहीं उगता। इससे सिद्ध होगया कि केवल बीज से गेहूं जौ आदि नहीं उगते। प्रायः सजीव स्थावर तथा सभी प्राणियोंकी उत्पत्तिके चार कारण प्रधान कर सुश्रुतकारने माने हैं कि—सुश्रुत शारीरस्थाने—

एवं चतुर्णां सामर्थ्याद्गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः। ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादङ्कुरो यथा॥ १॥

भा०—जैसे ऋतु—समय, खेत, जल, और बीज इन चारोंके एकत्र होनेसे अवश्य गेहूं आदि उगते हैं वैसे ही मनुष्यादिकी उत्पत्ति में स्त्रीका रजोधर्म होना रूप ऋतु समय, स्त्रीका गर्भाशय रूप खेत, गर्भाधानके पश्चात् दूध वा जलका पीना जल, अथवा पुंसवन सं-

स्कार के नामसे दूधमें पकाई औषधिका रस नासिका द्वारा जो पिलाया जाता है वह जल और पुरुषका वीर्य इन धारोंका यथावत् निर्दोष संयोग होने पर विधि पूर्वक ठीक २ गर्भ स्थिति हो जाती है। सामान्य कर सभी पार्थिव मनुष्यादि पदार्थोंकी उत्पत्ति में मुख्य कर सूर्य पिता और पृथिवी माता है वा सूर्य पुरुष और पृथिवी स्त्री है वेदमें भी स्पष्ट लिखा है कि "द्यौरहं पृथिवी त्वम्, तथा " द्यौष्पिता पृथिवी माता,, मनुष्यकी उत्पत्तिमें प्राणशक्ति प्रधान होने से पुरुष सूर्यरूप और अपानशक्ति प्रधान स्त्री पृथिवी रूप है तथा सूर्य और पृथिवीकी साक्षात् भी बाहिरी सहायता मिलनेसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं। तथा वृक्ष वनस्पत्यादि में सूर्य से वर्षा होकर पृथिवी में सब स्थावर उत्पन्न होते हैं। तात्पर्य यह कि स्त्री पुरुष दोनों का संयोग हुए बिना कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होता। इस से भिन्न एक वार्त्ता यह भी है कि जब जगत् में मनुष्यादि के शरीरादि सभी पदार्थ स्त्री पुरुष दोनों के संयोग से बनते हैं तो स्त्री वा पुरुष तथा पृथिवी वा सूर्यादि सभी में स्त्री पुरुष दोनों का भाग

मिला है। पुरुष के शरीर में मांस रुधिरादि कोमल भाग स्त्री रूप माता का और हड्डी आदि कठोरांश पुरुष रूप पिता के शरीर का भाग है इसी प्रकार स्त्री वा कन्या के शरीर में भी दोनों का भाग जानो, भेद केवल यह है कि स्त्री के शरीर में पुरुष का अंश कम वा गौण है और पुरुष में स्त्री का अंश कम वा गौण है अपना २ अंश दोनों में प्रधान है इसी प्रधानता के कारण स्त्री पुरुष के भेद का व्यवहार वनता इसी से स्त्री मृद्वङ्गी कहाती है। ऐसी दशा में यदि कहीं बीज वा खेत किसी एक से भी किसी वस्तु की उत्पत्ति हो जावे तो भी स्त्री पुरुष दोनों के संयोग से उत्पत्ति होने का नियम ठीक ही माना जायगा क्योंकि बीज में खेत और खेत में बीज दोनो दोनों में व्याप्त हैं तथापि जिस की जिस में प्रधानता होती है वह अपनी प्रधानता से प्रायः गौण को इतना वा ऐसा दवाये रहता है कि जानो द्वितीय इसमें नहीं है इसी सें स्त्री वा पुरुष किसी एक से सन्तान नहीं होते। और स्त्री स्वप्न में मैथुन करे तो वास्तव में गर्भ नहीं होता किन्तु भ्रांतिमात्र हो जाती है। हमारे पास एक

प्रश्न आया था कि दक्षिण में एक स्त्री गर्भवती थी प्रतिमास उस का गर्भ धीरे २ बढ़ता गया। वह जिस ग्राम में रहती थी वहां से बाजार दूर पर था इसकारण नववां मास जब आरम्भ हुआ और उस के पतिने प्रसूति का समय निकट समझा तो उस का पति बाजार से सब औषधि आदि ले आया कि जो प्रसव के समय स्त्री की रक्षा के लिये काम पड़ती हैं। नववां महीना पूरा होने में जब थोड़े दिन शेष रहे तो एक दिन अकस्मात् कान में से सर्राहट के साथ वायु निकल गया पेट खाली हो गया गर्भ का पता भी न लगा कि कहां गया। इस आश्चर्य का कारण मुझ से पत्र द्वारा पूछा गया तो यही उत्तर मैंने दिया था कि—

ऋतुस्नातातुयानारीस्वप्ने मैथुनमावहेत्।
आर्त्तवंवायुरादायकुक्षौगर्भंकरोतिहि ॥१॥
मासिमासिविवर्द्धतगर्भिण्यागर्भलक्षणम्।
कललंजायतेतस्यावर्जितंपैतृकैर्गुणैः ॥२॥

भा०—रजोदर्शन के बाद स्त्री स्नान कर शुद्ध हो पुरुष की चाहना रखती हो और पति देशान्तर जाने

आदि कारण से न मिल सके तभी यदि स्त्री को सोते समय मैथुन का स्वप्न हो तो उदरस्थ वायु आर्त्तव रुधिर को लेकर गर्भाशय में प्रविष्ट होकर गर्भ रूप से बढ़ता है वायु की गांठ बंध जाती है। अन्त में जब प्रसव का समय आता है तब वह वायु की गांठ खुल जाती है और किसी मार्ग से बाहर निकल जाती है रहा आर्त्तव रुधिर का जम जाना सो पीछे पिघल २ फट २ निकल जाता है इस कारण स्वप्न के गर्भ से कुछ भी उत्पन्न नहीं होता और जब दो स्त्री मिलकर मैथुन करें और गर्भ रह जाय तो हड्डी रहित सर्पादि के तुल्य विलक्षण कोई जन्तु हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि बीज के विना कोई उत्पन्न नहीं होता जहां कुछ उत्पन्न होता है वहां वैसी बीज शक्ति खेत वा स्त्री में ही व्याप्त है। पूरी वा प्रधान न होने से ठीक सन्तान भी नहीं होते इस से बीज खेत दोनों का नियम सर्वत्र सिद्ध है। सब काम नियम से होते विना नियम कुछ नहीं होता यह सब सिद्ध हो गया अब इस पर लिखना समाप्त है॥

प्रश्न (४) अन्य योनियों में भी क्या पाप वा पुण्य का विचार है? क्योंकि उनमें बुद्धि नहीं होती।

उत्तर—सब संसार में पाप पुण्यकी व्यवस्था भिन्न २ प्राणियों में न्यूनाधिक भाव से चढ़ती उतरती दीखती है किन्तु सब को एक से ही पाप पुण्य नहीं लगते। सो यह बात भिन्न २ जातियों के लिये ही अलग २ हो सो नहीं किन्तु एक २ जाति में भी देश काल और अवस्थादि के भेद से वा मुख्य कर ज्ञान के न्यूनाधिक भेद से पाप पुण्य न्यून वा अधिक लगते हैं। मनुष्य जाति में बाल्यावस्था में पाप पुण्य लगना नहीं माना जाता। आज कल अंगरेजी राज्य में भी दश वर्ष तक का बालक कुछ अपराध करे तो उस के लिये कुछ भी दण्ड नियत नहीं किया। अठारह वर्ष से पहिले रियासत वा गद्दी का अधिकारी नहीं होता इतनी अवस्था तक किसी विषय में प्रतिज्ञा पत्र (इकरारनामा) लिखे तो वह ठीक (जाइज) नहीं माना जाता। इसी प्रकार हमारे धर्मशास्त्र में भी दशवर्ष के भीतर की अवस्था वाले को कोई प्रायश्चित्त नहीं लगता, १०–१५ तक आधा प्रायश्चित्त लगता है।

सो यह बात युक्तिसे भी ठीक है कि कोई प्राणी अच्छे वा बुरे जो कुछ काम करता है उस से जो मनमें अच्छे बुरे संस्कार (ख्यालात) उत्पन्न होते हैं उन्हीं का नाम संचित पाप पुण्य है उनका लगना न लगना यही है कि स्मरण बना रहे। सो छोटे बालकों को वा उन्हीं के तुल्य दशा वाले अत्यन्त मूढ़ मनुष्यों को अपने किये भले बुरे कामों का कुछ भी स्मरण नहीं रहता यही पाप लगने का चिह्न है। इसी प्रकार अन्य पश्वादि योनियों में भी प्रायः अत्यन्त मूढ़दशा बालकादि के समान ही है। जैसे अत्यन्त मूढ़ को विशेष सुख दुःख वा हर्ष शोक व्याप्त नहीं होते वैसे उत्तम कक्षा के ज्ञानी परमार्थी तत्त्वज्ञ पुरुषों को भी निन्दा स्तुति मानापमानादि से सुख दुःख हर्ष शोक नहीं लगते उन के हृदय वा मन में बाह्य विषयों की छाया वा प्रतिबिम्ब चिरस्थायी नहीं पड़ता इससे उन को पाप पुण्य विशेष नहीं लगते। और ज्ञानी वा योगी पुरुषों का पाप कर्मों में भी चित्त लगे तो वे ज्ञानी वा योगी कहने मानने योग्य नहीं हो सकते तात्पर्य यह कि पाप

कर्म वे करते ही नहीं और जो कुछ स्वाभाविक देखना सुननादि करते हैं उन से कुछ विशेष दोष उनको नहीं लगता। इस लेख का तात्पर्य यह हुआ कि पश्वादि मनुष्य से नीची योनियों में पाप पुण्योंका विशेष संचय नहीं होता यदि किन्हीं कामों से कुछ२ कभी २ होता भी है तो वह इतना कम होता है कि जिसकी गणना न हो सकने से यही कहा वा माना जाय कि पाप पुण्य नहीं लगते। और पश्वादि योनियोंमें बुद्धि नहीं यह कहना कम बुद्धि होने के कारण माना जाय तो ठीक है। जैसे प्रत्येक मनुष्य में कुछ न कुछ बुद्धि अवश्य होती है पर जिन में बहुत कम होती है उन्हीं को निर्बुद्धि वा बुद्धिहीन (बेअकल) मूर्ख आदि शब्द वाच्य कहते हैं तात्पर्य यह कि पश्वादि में भी बुद्धि तो अवश्य है जिस के अनुसार वे अपने काम निश्चयात्मक विचार से करते हैं उस निश्चयात्मक विचारका नाम ही बुद्धि है॥

प्रश्न।

संसार में देखा जाता है कि पुरुष के वीर्य्य और

स्त्री के रज से मनुष्य की उत्पत्ति होती है इससे सा-
बित है कि पुरुष के वीर्य्य और स्त्री के रज में जीव
रहता है यदि ऐसा माना जावे कि जीव नहीं है तो
स्त्री के गर्भाशय में बढ़ता क्यों है इससे जीव अवश्य
है जो मनुष्य जीव का वेदोक्त पुनर्जन्म मानते हैं उन
का मत इससे खण्डन होता है और साबित होता है
कि जीव का पुनरागमन अर्थात् दूसरा जन्म नहीं है
क्योंकि जब पहले ही से वीर्य्य में जीव विद्यमान है
फिर जीव का आना जाना कदापि नहीं बन सकता
इसी माफिक जो चना, गेहूं, बाजरा, नारंगी, निम्बू,
अनार, सीताफल के बीज आदि जो कि जमीन के अ-
न्दर गाढ़ देने से जमीन को फोड़कर निकलते हैं और
बढ़ने लगते हैं इससे भी साबित होता है कि इन में
जीव है इससे भी जीव का पुनरागमन नहीं बनता
और भी देखा जाता है कि गोबर के संयोग से गुब-
रीले उत्पन्न होते हैं इससे साबित है कि उसके अन्दर
अवश्य कोई जानदार चीज है इससे भी साबित है
कि जीव न कहीं आता न कहीं जाता है और न पु-
नर्जन्म होता है इति ॥

७७—हम इसी पुस्तकमें पूर्व सुश्रुत का प्रमाण लिख चुके हैं मनुष्यादि प्राणियों की उत्पत्ति ऋतु, खेत, बीज और जल इन चारों के निर्दोष अविरुद्ध एकत्र होने पर होती है ॥

ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादङ्कुरोयथा

यह सुश्रुत का लेख मनुष्य पशु पक्षी कीट पतङ्ग और वृक्षादि स्थावरों की उत्पत्ति में एकसाही घट जाता है। प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति का जो २ समय है उस से विरुद्ध समय में वह उत्पन्न नहीं होता इसी लिये अन्य वीर्यादि साधनों के होते भी ऋतुकालसे भिन्न काल में मनुष्यादि का गर्भ नहीं रहता। मनुष्योत्पत्ति में रजवीर्य से भिन्न गर्भाशय का नाम खेत है। खेत के अभाव में अन्य साधनों के होने पर भी गर्भ स्थिर नहीं होता। तथा जैसे सूखे में गेहूं आदि नहीं उगते वैसे खाने पीने आदि द्वारा जल न पहुंचने पर गर्भ नहीं रहता। अर्थात् जिस स्त्री को ऋतुकाल में भी एक दिन पहिले से अन्न जल न मिला हो और वह गर्भाधान करे तथा गर्भाधान से एक दिन पीछे

तक कुछ न खावे पीवे तो केवल रज वीर्य से गर्भ र-
हना सम्भव नहीं यदि किसी के रह भी जावे तो उस
के शरीर में बाहर से न पहुंचने पर भी जल का भाव
माना जायगा । जिस २ के होने पर जो होता और
जिसके न होने पर जो नहीं होता वह २ उस २ का
कारण है इसके अनुसार जब चारों कारण हैं तब केवल
रजवीर्य को मनुष्योत्पत्ति में कारण कहना मानना कैसे
ठीक होगा ? । यह बात तो सत्य है कि जीवके बिना
गर्भ का बढ़ना नहीं होता इसी लिये सुश्रुत के शारी
रस्थान में यह लिखा है कि—

क्षेत्रज्ञोऽनुप्रविश्यावतिष्ठते ।

इस लेख से यह सिद्ध होगया कि स्त्री पुरुष के र-
जवीर्य में जीव नहीं रहता किन्तु गर्भाधान होने के
पश्चात् अपने २ कर्मानुसार वैसे २ गर्भ में जीव प्रवेश
करता है क्योंकि गर्भस्थिति के पश्चात् यहां शीघ्र ही
जीवात्मा का गर्भ में प्रवेश करना दिखाया है । और
मनुष्य की उत्पत्ति के समान ही जौ चना गेहूं आदि
में भी बीज बोने पश्चात् जीव का प्रवेश होता है तभी

जौ आदि भी उगते हैं और फल पकते समय उन जौ आदि में से जीव निकल जाता है इसी लिये "ओषध्यः फलपाकान्ताः" इस कथनसे मनुजीने फल पकते समय जिनका अन्त काल हो जाय उनको ओषधि कहा है। मनुष्यादिके मरणके समान ही ओषधियों [गेहूं जौ आदि] का भी मृत्यु माना जाता है। इसी लिये पके गेहूं जौ आदि फलरूप अन्नके खानेमें मनुष्यादिको कुछ दोष नहीं लगता। जब रजवीर्यका संयोग होने पश्चात् गर्भ में जीवका प्रवेश सिद्ध है तो जीवका वेदोक्त पुनर्जन्म ठीक सिद्ध है कोई दोष नहीं आता। तथा गोबर आदिसे गुबरीले आदि उत्पन्न होते हैं वहां भी पूर्वोक्त चारों कारण तथा जीवका बाहरसे प्रवेश माना जायगा। क्योंकि सर्वत्र सब काल में सहस्रों जीव जन्मते मरते रहते हैं सो जन्ममरणका प्रवाह [सिलसिला] प्रतिक्षण विद्यमान रहता है। जिस २ को कर्मानुसार जहां २ जन्म लेना है वह २ अपने २ वासनारूप संचित कर्मों की प्रेरणासे स्वयमेव वहां उपस्थित होता रहता है। जैसे रेलमें बैठनेके समय पर उन २ स्टेशनों

वैठने वाले चारों ओरसे आ २ कर उपस्थित होते रहते हैं मेलादिके समय बहुत २ आजाते हैं वैसे ही गोबर आदि जिस २ कारणसे जन्म लेना है वहां २ जन्म लेनेके समय जीव एकत्रित होते रहते और मेलादिके समान चतुर्मासादिके समय बहुत हो जाते हैं उन २ को वैसा २ जन्म मिलता जाता है। और इस पक्षके अनुसार गोबर आदिमें जानदार चीज़ कुछ नहीं है किन्तु जैसे पृथिवी में जहां २ गेहूं आदिका उत्पत्ति होने योग्य कारण होता है वहां २ ही बोने पर जमते और जहां जमने योग्य कारण नहीं होता वहां २ नहीं जमते वैसे ही जहां २ गोबर आदिमें गुबरीलादि बनने का सामान होता है वहां २ ही उन २ जीवोंकी उत्पत्ति होती है इसी कारण सबसे सब नहीं बनते और सूखे गोबरसे गुबरीलादि भी उत्पन्न नहीं होते इससे भी सिद्ध है कि जीवका पुनर्जन्म अवश्य होता है॥

यदि संसारमें जीव है तो भूसादि असारमें जीव न होना सिद्ध है फिर भूसादि खाने वाले पशु निर्बल हों उनमें बीज भी न हो सो क्यों होता है?। यदि

गोबरमें कुछ जानदार चीज है तो सब कालमें गुबरीले क्यों नहीं होते ? तथा यदि स्त्री पुरुषके रजवीर्यमें जीव रहता है तो जब २ स्त्री पुरुषका संयोग होकर रजवीर्य इकट्ठा होता है तब २ गर्भ क्यों नहीं हो जाता ? । हमारे मतमें यह दोष इस लिये नहीं आता कि जैसे छूटने वाली रेलमें चढ़नेके लिये ही टिकट ले २ कर लोग चढ़ते हैं जब रेल छूटनेका समय नहीं होता तब कोई गाढ़ी किसी कारण खड़ी भी हो तो कोई उसमें नहीं बैठते वैसे ही जब रजवीर्य खेत समय और जल इस योग्यताके होते हैं कि जिनसे शरीर बन सकता है तभी गर्भाशयमें जीव प्रवेश करते हैं अन्य समय वहां आते भी नहीं यदि कोई भ्रमसे प्रवेश भी करे तो ठहरता नहीं किन्तु लौट आता है इस कारण रजवीर्यके संयुक्त होने पर भी गर्भ नहीं रहता ॥

यह समाधान हमने आयुर्वेदके सिद्धान्त अनुसार लिखा है । द्वितीय उपनिषदोंमें लिखे अनुसार वेदका सिद्धान्त यह भी है कि ओषध्यादि वर्षाद्वारा आकर जीव प्रवेश करता है वही अन्न द्वारा वीर्यमें पहुंचता

वही गर्भाशयमें जन्म लेता ओषधि अन्न वीर्यादिमें उसकी तिरोभूत दशा रहती है इस पक्षके अनुसार वीर्यमें जीवका होना तो सिद्ध हुआ परन्तु उसके जन्मान्तरसे आनेका मार्ग जब सिद्ध किया गया तो पुनर्जन्म होना सिद्ध होगया । अभिप्राय यह निकला कि वीर्यमें जीव मानने पर भी पुनर्जन्मका खण्डन नहीं होता किन्तु पुनर्जन्मका होना सिद्ध है ।

हमें आशा है कि इतने लेखसे उक्त प्रश्नका उत्तर आगया ॥

अब अन्तमें सबका उपसंहार यह है कि पुनर्जन्म विषयमें जहां तक हमको प्रश्न वा सन्देह ज्ञात हुए सबके उत्तर दिये गये । सबसे बड़ी शङ्का प्रायः लोग यही करते हैं कि यदि पुनर्जन्म होता है तो हमको स्मरण क्यों नहीं ? इसका स्पष्ट उत्तर हमने यही दिया है कि स्मरण तो सबको कुछ न कुछ अपनी बुद्धिके अनुसार अवश्य है परन्तु स्मरणका स्मरण अज्ञानता की प्रबलता से नहीं है इस कारण स्मरण होने पर भी यह कहा जाता है कि हमको स्मरण नहीं । स्मरण

अनेक प्रकारका होता है यदि तुमको स्मरण न हो तो मृत्युसे कदापि न डरो। जैसे किसीके घरमें कोष हो और उसको ज्ञात न हो कि मेरे यहां इतना धन है तो उसका न होना सिद्ध नहीं होता। जो मनुष्य हृदयके गुप्त स्मरणको जैसा २ ही विद्या ध्यान सत्सङ्ग योगाभ्यासादि द्वारा उघाड़ता जावे वैसा ही अधिक २ स्मरण होता जायगा। जैसे सब एक से ज्ञानी नहीं होते वैसे स्मरण भी प्रत्येक व्यक्तिमें भिन्न २ है। जिन २ को कुछ ज्ञान होता है वे जन्मान्तरोंके स्मरणसे ही तो संसारको वैसा २ अनित्य समझते विना स्मरणके कदापि नहीं होते परन्तु अधिक अज्ञानियोंको उद्भूत स्मरण प्रायः इसी जन्मके कामोंका नहीं रहता किन्तु किसी २ को कभी रहता वा होता है वह उस अंशमें ज्ञानी भी वैसा ही होता है। इसलिये किसीको स्मरण नहीं [illegible] नहीं बनता॥ इति॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

पुस्तक मिलनेका पताः—

मैनेजर-ब्रह्मप्रेस

इटावा।